हमारा लखनऊ पुस्तकमाला-35वाँ पुष्प

# नवाबी के जलवे

योगेश प्रवीन

छतर मंजिल

कैसरबाग दरवाजा

हमारा लखनऊ पुस्तकमाला–35वाँ पुष्प

# नवाबी के जलवे

लेखक
डा. योगेश प्रवीन

सम्पादक
राम किशोर बाजपेयी

हिन्दी वाङ्मय निधि
लखनऊ

# हमारा लखनऊ पुस्तकमाला

पद्म विभूषण से अलंकृत, साहित्य वचस्पति स्व. पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा 'हिन्दी वाङ्मय निधि' की स्थापना की पृष्ठभूमि में उनके मन में बसी एक गहरी व्यथा थी कि हिन्दी के सामान्य पाठकों को हिन्दी भाषा में ऐसी मनोरंजक एवं ज्ञान वर्द्धक पुस्तकें सुगमता से उपलब्ध नहीं हो पातीं जैसी कि अंग्रेज़ी भाषा में सामान्यतः उपलब्ध रहती हैं।

तदनुसार उनके द्वारा स्थापित 'निधि' की सहायता से........तमिल साहित्य का इतिहास, सल्तनतकालीन प्रमुख इतिहासकार, थाईलैण्ड, पाँचवी-सातवीं शताब्दी का भारत देश के अभिधान-भारत-हिन्दू-इण्डिया की निरुक्ति तथा एक भारतीय वनविद् के संस्मरण आदि पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

कालान्तर में जब प्रो. शैलनाथ चतुर्वेदी जी 'हिन्दी वाङ्मय निधि' के अध्यक्ष हुए तो उन्होंने अपने स्वनाम धन्य पिता स्व. पं. श्री नारायण जी चतुर्वेदी की अपेक्षाओं के अनुरुप लखनऊ के निवासियों को लखनऊ की महान धरोहर से परिचय कराने हेतु 'हमारा लखनऊ' पुस्तकमाला के प्रकाशन की योजना बनायी। उक्त योजना के अन्तर्गत वह 'हमारा लखनऊ' पुस्तकमाला की श्रृंखला में 34 पुष्प पिरोते हुए 08 जुलाई, 2013 को ब्रह्मलीन हो गये। तथापि उनके द्वारा 34 पुष्पों से पिरोई गयी यह माला अभी आंशिक रुप से ही गुंथ पायी है, और इस माला में अभी अन्य पुष्पों का पिरोया जाना शेष है। हमारा प्रयास होगा कि हम उस माला में उनके द्वारा निर्धारित कार्यक्रम और मापदण्डों के अनुरुप निरन्तरता से नये पुष्प पिरोते रहें।

उनका आशीर्वाद हम सबका मार्ग प्रशस्त करता रहेगा; ऐसा मेरा विश्वास है।

**शैलेन्द्र नाथ कपूर**
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
अध्यक्ष, हिन्दी वाङ्मय निधि लखनऊ विश्वविद्यालय

# हिन्दी वाङ्मय निधि
# सचिव का निवेदन

पद्मभूषण से अलंकृत साहित्य वचस्पति स्व. पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी के अन्तर्मन में एक कचोट थी कि मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें अंग्रेज़ी भाषा में तो प्रचुरता से उपलब्ध रहती थीं, किन्तु हिन्दी के पाठक उस प्रकार की सामग्री से सर्वथा वंचित रह जाते थे। अपने मन की उस कचोट को शान्त करने के प्रयास में उन्होंने अपनी बचत से रु. 25,000 निकाल कर 'हिन्दी वाङ्मय निधि' की स्थापना इस आशय से की थी कि हिन्दी के जिज्ञासु पाठकों को ज्ञान-विज्ञान तथा अन्य विविध विषयों पर सामान्यतया हिन्दी में न उपलब्ध होने वाली पुस्तकें कम मूल्य में सुलभ करायी जा सकें। तदनुसार 'निधि' की सहायता से हिन्दी में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई।

कालान्तर में उनके पुत्र डॉ. शैलनाथ जी चतुर्वेदी ने 'हिन्दी वाङ्मय निधि' के अध्यक्ष पद पर आसीन होते हुए अनुभव किया कि हमारे देश के नगरों में त्वरित हो रहे परिवर्तन के चलते नगर के आम लोग अपने अपने नगर-जनपद में रहते हुए भी उसके गौरवमयी इतिहास के बारे में अल्पज्ञ रह जाते हैं। परिणाम स्वरुप, हमें अपने नगर-जनपद के प्रति प्रेम और गौरव का बोध नहीं हो पाता- जिसके अभाव में हम अपने नगर-जनपद को मात्र सराय या फिर होटल से अधिक कुछ भी नहीं समझते............और तब फिर उसके विकास की चिन्ता की बात ही क्या? उन्हीं के शब्दों में–

"......................अपने नगर-जनपद से हमारा भावनात्मक सम्बन्ध होना ही चाहिए। यह तभी होगा जब हम उसके इतिहास को जानें, सांस्कृतिक विरासत से परिचित हों, विभिन्न वर्गों-सम्प्रदायों के नगर-जनपद को योगदान का आँकलन करें, नगर की विभिन्न संस्थाओं और उसे गौरव प्रदान करने वाले व्यक्तियों के कार्यकलापों को समझें। नगर-जनपद से प्यार वह धागा है जो उसके सभी निवासियों को बिना भेदभाव के जोड़ता है। वास्तव में जातीय और सांस्कृतिक इकाई के रुप में प्रत्येक जनपद का अपना रुप-रंग है जिनसे मिलकर हमारे देश भारत का निर्माण हुआ है। इस प्रकार नगर-जनपद से भावनात्मक नाता जोड़कर

उसके विकास का सामूहिक प्रयत्न करना वस्तुतः भारत के विकास का प्रयत्न होगा।''

उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत उनकी प्रेरणा से ही 'हिन्दी वाङ्मय निधि' द्वारा ''हमारा लखनऊ'' पुस्तकमाला निकालने का संकल्प लिया गया था, जिसके अनुपालन में लखनऊ के इतिहास, संस्कृत, कला, साहित्य तथा यहाँ के विशिष्ट व्यक्तियों, घटनाओं, संस्थाओं आदि विविध विषयों पर सक्षम विद्वानों द्वारा छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार करवाकर सस्ते मूल्य पर उपलब्ध करायी गयी थी। एक मिशन की तरह आरम्भ की गयी इस योजना को आप सबका समर्थन एवं संरक्षण पाकर हम लखनऊ नगर-जनपद के गौरवमयी इतिहास एवं संस्कृति के विविध पक्ष जिज्ञासु पाठकों के हाथों में रखते चले आ रहे हैं। इस सन्दर्भ में हम श्री मनीष अवस्थी के प्रति आभार प्रकट करते हैं जिनके सक्रिय सहयोग के बिना हमारे संकल्प का निर्वहन सम्भव न था।

हमारा सतत् प्रयास होगा कि स्व. प्रो. शैलनाथ जी चतुर्वेदी द्वारा जलायी गयी अलख की इस ज्योति को हम निरन्तरता से जगाये रखें। आप सभी का सहयोग और आशीर्वाद हमारा सम्बल होगा।

53, खुर्शेदबाग़
लखनऊ–226004
दूरभाष : 0522-2683132

**रागिनी चतुर्वेदी**
सचिव, हिन्दी वाङ्मय निधि

# सम्पादकीय

"हिन्दी वाङ्मय निधि" के अध्यक्ष पद पर आसीन रहते हुए हमारे श्रद्धेय स्व. शैलनाथ जी चतुर्वेदी अपने संकल्प के निर्वहन की प्रक्रिया में लखनऊ नगर जनपद के गौरवमयी इतिहास के उन पन्नों को पलटने के प्रयास में रत रहे जो अभी तक अधिकांश लखनऊ वासियों के सम्मुख या तो खुले नहीं थे अथवा फिर अधखुले ही रहे गये थे। अपने इस प्रयास में उन्होंने लखनऊ के ऐसे लेखकों को भी खोज निकाला जिनको लखनऊ के गौरवमयी इतिहास के विषय में प्रामाणिक जानकारी थी। कालान्तर उन्होंने 'हिन्दी वाङ्मय निधि' के माध्यम से 'हमारा लखनऊ' पुस्तकमाला के प्रकाशन की व्यवस्था की एवं अपने जीवन काल में उपरोक्त पुस्तकमाला की श्रृंखला में 34 पुष्प पिरोते हुए गत 08 जुलाई 2013 को ब्रह्मलीन हो गये।

इस अपरिहार्य घटना से "हिन्दी वाङ्मय निधि" परिवार के सदस्य हतप्रभ रह गये। तथापि उनकी भारत के प्राचीन मन्दिरों और विशेषकर 'बृहदीश्वर मन्दिर' के प्रति अटूट श्रद्धा को देखते हुए उनकी स्मृति में बृहदीश्वर मन्दिर तथा तत्सम्बंधित सामग्री का संकलन करते हुए "हिन्दू धर्म दर्शन का गौरव-तन्जौर का बृहदीश्वर मन्दिर" शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की गयी। यही हिन्दी वाङ्मय निधि की उनके प्रति श्रद्धांजलि थी। यह पुस्तक सामान्य पाठकों व विद्वत्जनों में बहुत लोकप्रिय हुई।

कालान्तर में यह निर्णय लिया गया कि उनकी स्मृति को स्थायित्व देने के लिए हम उनके द्वारा स्थापित 'हमारा लखनऊ' पुस्तकमाला में पिरोए गये 34 पुष्पों में कुछ और पुष्पों को गूंथते हुए उस माला को पूर्णता की ओर ले जायें। तदनुसार 'हमारा लखनऊ' पुस्तकमाला का 35वाँ पुष्प सहृद पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है जिसके लेखक लखनऊ के ख्यातिलब्ध इतिहासकार श्री योगेश प्रवीन जी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में मात्र इतना कहना पर्याप्त होगा कि लखनऊ के नवाबों के रहन सहन के तौर तरीक़ों का यदि ईमानदारी से विश्लेषण किया जाये तो वे स्वाभाविक रूप से भोग-विलासी एवं सनकी थे। उनके शासनकाल में चापलूसों और हसीनाओं का वर्चस्व रहा करता था जिसके चलते अवध राज्य का अधोपतन हुआ। यह बात अलग है कि इनकी कमज़ोर कड़ियों को अंग्रेज़ शासकों ने चतुराई पूर्वक जमकर भुनाया; कहीं सच्चे तथ्यों का सहारा लेकर तो कहीं बातों का बतंगड़ बनाकर।

**राम किशोर बाजपेयी**
सम्पादक

# दिल की बात

लखनऊ का नाम आते ही नज़र में कौंध जाती है गोमती पर बिखरी गुलाबी शामें, छोटी लखौड़ियों से बनी बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें, दरवाजों पर सजी लचकीली मछलियाँ, कुछ हसीन सूरतें, और फिर दिल को याद आती है यहाँ की खूशबूदार मीठी ज़ुबान।

इसके साथ ही ध्यान में आ जाते हैं नवाबों के रंग–महलों की रौनकें, कुछ नाज़ुक नाज़ुक बातें, नख़रीली बेगमों की फ़रमाइशें, माशूक़ों की गुस्ताख़ियाँ, मुसाहिबीन की चालाकियाँ, अजीब ओ ग़रीब तर्ज़े अमल और कुछ दिलचस्प घटनायें।

सच तो यह है कि इतिहास के इति हो जाने के बाद फिर बचता ही क्या है। अवध के इतिहास के इसी प्रकार बचे खुचे हास–परिहास के कुछ प्रसंग, यहाँ इस प्रयास में मिलेंगे। श्रुति और स्मृति दोनों परम्पराओं से अतीत आकर वर्तमान में उतरता है उसमें से कुछ भी अगर जीवन को उल्लास, उमँग या उत्साह सौंपने में सक्षम होता है तो फिर उसकी सार्थकता में कोई सन्देह नहीं।

इस सन्दर्भ में मैं स्वनामधन्य साहित्य-वचस्पति स्व. पं. श्रीनारायण जी चतुर्वेदी द्वारा स्थापित ''हिन्दी वाङ्मय निधि'' के पूर्व अध्यक्ष प्रो. स्व. शैलनाथ जी चतुर्वेदी को श्रद्धास्पद साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने जीवनकाल में ''हमारा लखनऊ'' पुस्तकमाला की श्रृंखला में 34 पुष्पों के माध्यम से लखनऊ के गरिमामय इतिहास के बारे में जन साधारण को अवगत कराने का सफल प्रयास किया।

यह पुष्प उन्हीं के श्री चरणों में सादर भेंट है। आखिर इस पुस्तक की पृष्ठिभूमि में भी कहीं उनका संकल्प ही तो निहित है न !

**योगेश प्रवीन**
पंचवटी
89, गौसनगर, पाण्डे गंज
लखनऊ–18

# विषय सूची



***

# लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला बहादुर और उनके शौक़ो शरूर

1

अवध की क़दीमी तारीख़ में ये शेर बहुत मशहूर है–

**सात हरफ़ों ने किया ख़ाना ख़राब**
**तीन ते, दो अलिफ़, एक हे और एक बे**

ये शेर महज़ एक शेर नहीं है, इसमें अवध के नवाब आसफुद्दौला की बरबादी की कहानी क़ैद है। आसफुद्दौला बहुत कुछ थे और शायद उससे भी सिवा होते अगर इन सात मुसीबतों से उनका वास्ता न पड़ता।

तीन ''ते'' से इन तीन लोगों की तरफ इशारा है।

(1) तफज़्ज़ुल हुसैन ख़ाँ-नवाब के उस्ताद जो किशोर अवस्था से उन पर हावी थे।

(2) तहसीन अली ख़ाँ ख़्वाजासरा–जो नवाब का ख़ास मुहलगा सलाहकार था और उनके महलों का इन्तज़ामकार था।

(3) ''टिकैतराय'' राजा–जो उनके सुप्रसिद्ध दीवान थे और उनके दिलों दिमाग़ पर पूरी तरह छा गये थे।

**दो अलिफ़ से मतलब है:–**

(4) अल्मास अली खाँ ख़्वाजासरा–जिसने उनकी नवाबी के जवाब में अपनी नवाबी क़ायम कर ली थी।

(5) अशरफ अली ख़ाँ-वज़ीर अली ख़ाँ के रिश्तेदार। जिनकी चालों ने नवाब को नादार किया।

**एक ''हे'' का मानी है:–**

(6) हसन रज़ा ख़ाँ ''सरफ़राजुद्दौला''–जो नवाब आसफुद्दौला के तीसरे मुख्यमंत्री बने थे। आसफुद्दौला इन्हें प्यार से हसनू भईया कहते थे। इन्होंने ही राजा झाऊ लाल पर इल्ज़ाम लगाकर उन्हें वज़ारत के पद से हटाया था यही बाद में नवाब की मौत का कारण बना।

**एक ''बे'' का अर्थ है:–**

(7) बहू बेगम साहिबा–ज़ो नवाब की माँ थीं लेकिन उनकी हठधर्मी और अनर्गल स्वाभिमान के कारण माँ बेटे के बीच अच्छे सम्बन्ध कभी मुमकिन न हो सके।

नवाब आसफुद्दौला ने तख़्ते सल्तनत की मसनद का तबादला फ़ैज़ाबाद से लखनऊ को अपनी मरज़ी से किया था इसलिए उनकी विधवा माँ बेगम उनसे नाराज़ थीं और वो अपने बेटे के साथ लखनऊ नहीं आयीं। ये दिलशिकनी इस हद तक बढ़ गयी कि नवाब ने वारेन हैस्टिंग्स की चालों में आकर अपनी माँ और दादी को लूट लेने की कोशिश की, जो बेशुमार दौलत जागीरों की मालकिनें थीं। लखनऊ से उनके पहले नायब मुख़्तारुद्दौला (मुर्तजा ख़ाँ) फ़ैज़ाबाद के लिये रवाना हुये और वहाँ जाकर उन्होंने बहू बेगम से लाखों रुपये ऐंठ लिये। इसके बाद जब वह उनकी दादी नवाब बेगम पर हाथ साफ करने चला तो नवाब बेगम ने अपने इलाक़े के सब राजाओं और ज़मींदारों को अपने किले में इकट्ठा कर लिया। उन सबकी मौजूदगी में उन्होंने इस लखनउवा कासिद को खूब फटकारा और साफ़ साफ़ कह दिया कि "मुल्क अवध मेरे बाप का था, जो आसफुद्दौला के बाप का नहीं है"। उनका ये रँग और मिजाज़ देखकर मुख़्तारुद्दौला चुपचाप फ़ैज़ाबाद से भाग निकले, इधर नवाब को भी अपनी करनी का नतीजा फ़ौरन मिल गया। उन्होंने जितना रुपया अपनी माँ बहू बेगम से ज़बरदस्ती वसूल किया उससे कहीं ज़्यादा रक़म अँग्रेज सरकार ने उनसे वसूल की।

इस तरह जब नवाब की अक़्ल ठिकाने लगी, तो वे अपनी माँ की ज़ियारत के लिए फ़ैज़ाबाद भागे, बहू बेगम को मनाकर जब आसफुउद्दौला उन्हें अपने हमराह लखनऊ ला रहे थे, रास्ते रास्ते अशर्फ़ियाँ लुटाते हुये आये। उस बार चिनहट कोठी पर जनाबे आलिया (राजमाता) का शाही सम्मान हुआ। इस कोठी को झाड़ फ़ानूसों और हण्डे कँदीलों से सजाकर बहू बेगम को इसमें उतारा गया था। लखनऊ की सरहद में उनके पाँव रखते ही तोपों की आवाज़ से ऐलान किया गया और गरीबों में अनाज तक़सीम किया गया। यहाँ से पूरी तैयारी के बाद जुलूस उठा जिसमें हाथी, घोड़े, ऊँट, पालकी, ताशे, नक़्क़ारे और हज़ारों का मजमा शामिल हुआ। यह जुलूस दीवानख़ाने के करीब बनवायी गयी हवेली "सुनहरा बुर्ज" तक आया।

नवाब आसफुद्दौला इमारतें बनवाने और बाग़ लगवाने के अलावा तमाम और भी शौक़ रखते थे। सवारियों में उन्हें पालकी सबसे ज्यादा पसन्द थी। गर्मियों के मौसम में उनकी पालकी पर ख़स के पर्दे पड़ते थे जिसको छिड़कने वाले पीनस के साथ साथ मशकें लेकर चलते थे। नवाब कभी कभी हाथी पर बैठ कर शहर में हवाख़ोरी के वास्ते निकलते थे और ऐशबाग तक जाते थे।

उनके निजी अस्तबल में 3000 घोड़े पले थे जिनमें अरब और कलारास घोड़े हुआ करते थे। उनके फीलख़ाने में 2000 हाथी पले थे। नवाब आसफुद्दौला के पास 80 हज़ार प्यादे और 20 हज़ार सवारों की फौज थी।

अबूतालिब ने अपनी मशहूर तवारीख़ ''जफ़ज्जुल गाफ़लीन'' में ज़िक्र किया है कि नवाब आसफुद्दौला के महल के चिड़ियाघर में मुर्गी, भेड़े, हिरन, बन्दर, सॉप और बिच्छू के अलावा करीब तीन लाख कबूतर पले थे। जिन पर लाखों रुपये खर्च किये जाते थे। उनके पास पला हुआ सिर्फ अजगर का एक जोड़ा एक एक मन माँस खा जाता था। मुंशी मेढ़ी लाल ने बयान किया है कि नवाब आठों पहर भंग की तरंग में रहा करते थे। वो अक्सर बैठकर चींटियों की कतार से या मकड़ियों से खिलवाड़ किया करते थे। उन्होंने खेल ही खेल में हाथी ''दल बादल'' की शादी 'बड़कनी हथनी' से करवा दी थी जिसमें वो खुद दुल्हे वाले बने थे। दुल्हन वाले बने थे मियाँ अल्मास अली ख़ाँ ख़्वाजासरां। इस हाथी बारात में 1200 हाथी बाराती बनकर गये थे और शादी पर लाखों रुपया खर्च हुआ था।

नवाब साहब अक्सर चौक वाली बारादरी में बैठकर पतँगबाजी के पेंच देखते थे। फूलों से उनको बड़ा लगाव था और उनमें भी गुलाब पर तो जान छिड़कते थे। बर्फ का पानी बड़े शौक से पीते थे। शराब से उन्हें कोई इन्कार नहीं था।

लेकिन बाद में तो नामुराद अफ़ीम भी उनके मुँह लग गयी थी। शुरू-शुरू में वो हुक्क़े से बहुत चिढ़ते थे लेकिन फिर उसे भी शरीक़ेहयात कर लिया था। वैसे उम्र के आखिरी हिस्से में वो बड़े परहेज़गार हो चुके थे और उनके हाथों में हर वक़्त तस्बीह रहा करती थी (अफ़जल तवारीख़'' मुंशी राम सहाय'' तमन्ना)।

नवाब ने 'मीर', 'सौदा' और 'सोज़' जैसे शायरों को पनाह दी थी। जनाब ''सौदा'' का कलमदान लेकर गुन्चा नाम का एक नौकर चलता था और जो खुद भी शेर कहता था। ''मीर'' तो उर्दू अदब के चोटी के शायरों में से थे ही और फिर सैय्यद मोहम्मद मीर ''सोज़'' को नवाब ने अपना उस्ताद बना रखा था। नवाब आसफुद्दौला ''आसिफ'' नाम से शेर कहते थे। उनकी लिखीं ग़ज़लें, रुबाईयाँ और मसनवी मिलती हैं। उनका दीवान हैदराबाद दक्खिन में मौजूद है और बेनी नारायण की कलम से लिखी हुई कुछ ग़ज़लें विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में सुरक्षित है। और तो और नवाब की बेगम शम्सुन्निसा साहिबा भी शायरी करती थीं और उनका बेटा वज़ीर अली भी अच्छा शायर था। आसफुद्दौला के लिखे चन्द अशआर हैं–

या डर मुझे तेरा है कि, मैं कुछ नहीं कहता
या हौसला मेरा है कि, मैं कुछ नहीं कहता
कहता है बहुत कुछ, वो मुझे चुपके ही चुपके
ज़ाहिर में ये कहता है कि मैं कुछ नहीं कहता।

## नवाब आसफुद्दौला की दरियादिली का नमूना

एक बार नवाब आसफुद्दौला शाम के वक़्त अपने दौलतख़ाने की बालाई मंज़िल बारजे के पास मुसाहिबों से घिरे बैठे थे। सामने संगी मस्जिद के नज़दीक एक गरीब बुढ़िया लोहे की एक तलवार लिये नवाब की नजरें करम के इन्तज़ार में खड़ी थी। जैसे ही नवाब ने उस तरफ देखा उस गरीब मोहताज ने सलाम पेश किया। नवाब ने समझा शायद यह अस्लिहा उन्हें नज़र करने के लिये लायी है। उन्होंने एक चोबदार को भेज कर उससे तलवार मंगवा ली। उसे देखा तो पाया कि वह मामूली कच्चे लोहे की बनी हुई है और जंग खा चुकी है। ऐसी बेकार की चीज़ को उन्होंने फौरन वापस कर दिया और पुछवाया कि अगर उसे किसी चीज़ की दरकार हो तो बेशक उसकी वह मुराद पूरी हो सकती है मगर वह तलवार उनके किसी काम की नहीं।

बुढ़िया ने अपनी लौटी हुई तलवार हाथों में ले ली और मुँह से कुछ नहीं कहा। अब वह सिर्फ उसे उलट पलट कर ग़ौर से देख रही थी। नवाब आसफुद्दौला को उसकी इस हरकत पर बड़ी हैरानी हुई। वहीं से पूछा "क्या तुम्हें शक है कि हमने इसे बदल लिया है, या तलवार में से कुछ निकाल लिया गया है?" बुढ़िया ने नम निगाहों से अर्ज़ किया, "बन्दापरवर हम ग़रीब और मोहताज ये सुनते आए थे कि आसफुद्दौला 'पारस' हैं मेरी तक़दीर कि मेरी तलवार आपके हाथों में पहुँच कर भी लोहे का लोहा ही रही।"

यह सुनकर नवाब आसफद्दौला मुस्कराये और उसी दम उस तलवार के वज़न के बराबर सोने की मोहरें उस बुढ़िया को दिलवा दीं। वह बेवा औरत अपने दामन में अपनी उम्र भर का इन्तज़ाम लेकर दुआएँ देती हुई दौलतख़ाने से चली गयी।

नवाब आसफुद्दौला की दानशीलता दिन ब दिन बढ़ती ही चली गयी थी। उन्होंने अक्सर अपनी ज़रूरत का ख्याल किये बिना ग़रीब दुकानदारों की पूरी की पूरी दुकान का सामान ख़रीद लिया था। यही नहीं उन्होंने लाख दानों की

एक तस्बीह (सुमिरनी) पूरे एक लाख में ख़रीदी थी। नवाब आसफुद्दौला के इस स्वभाव का फायदा उठाकर उनके तमाम नायब और मुसाहिब रईस होते चले गये और ख़ज़ाने की रक़म के साथ अच्छा खिलवाड़ किया जाने लगा।

एक बार जब नवाब साहब चौक वाली बारादरी में बैठे ऊँचे आसमान में बदे में लड़ती पतँगों का नज़ारा देख रहे थे, उनके एक ख़ास आदमी ने चुग़ली करने की गरज़ से कानों में करीब आकर कहा, "आलीजाह, आपको ख़बर नहीं कुछ लोग आपकी नकली शाही मुहर का इस्तेमाल करके खूब रक़म खा रहे हैं"।

नवाब ने पूछा, "उस मोहर पर किसका नाम है"?

जवाब मिला, "हुजूर, आपका और किसका"।

इस पर नवाब आसफुद्दौला ने बिना कनकौव्वों पर से निगाह हटाये मुस्करा कर सिर्फ इतना कहा, "मेरे दोस्त इसमें क्या ग़म है, चाहे मैंने इजाज़त दी या न दी, खाते तो मेरे नाम का ही हैं"।

## मूसाबाग़ की दास्तान

नवाब आसफद्दौला ने अपनी हुकूमत के दौरान बत्तीस बाग़ लगवाये थे। मूसाबाग़ भी एक था। अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार इस बाग़ का नक्शा चूँकि मोसियो मार्टिन के द्वारा बनाया गया था इसलिए इसे मोसियोबाग़ या मूसाबाग़ कहा जाने लगा लेकिन लखनऊ शहर के पुराने लोगों का कहना है कि नवाब आसफुद्दौला कुछ नवाबों और मुसाहिबों के साथ घोड़े पर सवार होकर अपने शीश महल से पश्चिम की तरफ गोमती के किनारे घूमने जाया करते थे। एक दिन जब वो गऊघाट से दो मील आगे बारीबखन गाँव से गुज़र रहे थे तो एक बड़ा सा तन्दुरुस्त चूहा अचानक नवाब साहब के घोड़े की टाप से दबकर मर गया। चूहे के इस तरह मर जाने पर उन्हें बड़ा रंज हुआ। यह देखकर उनके मुसाहिबों ने फ़ौरन हालात को हवा दे दी और बोले, 'ग़रीबपरवर, दरअसल ये चूहा कितना खुशनसीब था जो आपके घोड़े "सिकन्दर" की शाही टापों के नीचे शहीद हो गया है। इसकी इस ग़ैरमामूली मौत का तक़ाज़ा है कि इसका मज़ार बनवाया जाये और उसके लिये एक यादगार बाग़ भी लगवाया जाये इससे उस गरीब की रुह को सुकून मिलेगा और आपके नाम की शोहरत होगी। फिर क्या कहना, हुक्मेशाही जारी हुआ और उस मुए मूस की याद में एक बेहतरीन बाग़ तैयार हुआ जिसे आसपास की जनता मूसाबाग़ कहकर पुकारने लगी।

इसी तरह एक रोज़ नवाब आसफुद्दौला ऐशबाग में टहल रहे थे कि एक चौदह साल का लड़का एक पिंजरे में एक जोड़ा कबूतर लेकर उनके नज़दीक आया जब नवाब साहब ने उससे वहाँ आने का सबब पूछा तो उसने सर झुका कर कबूतरों का जोड़ा उनकी नज़र कर दिया। उन मामूली कबूतरों की क़ीमत समझते हुये नवाब ने नौकर से एक रुपया उस लड़के को दे देने के लिये कहा। इस पर वो ग़रीब लड़का आँख में आँसू भरकर बोला, "हुज़ूर, मैं सैय्यदज़ादा हूँ, कोई चिड़ीमार नहीं। एक महीना पहले मेरा बाप मर गया। मेरे घर में इन कबूतरों के सिवा कुछ भी नहीं था। दो रोज़ फ़ाक़े करने के बाद मैं ये जोड़ा लेकर आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ"।

नवाब आसफुद्दौला को यह सुनकर बड़ा अफ़सोस हुआ। उन्होंने उसी वक़्त उस लड़के को चाँदी के सौ सिक्के दिलवाये। जब वो लड़का रुपये की थैली लेकर चला तो बाग़ के दरोग़ा ने हँसकर कहा, "बड़े नसीबों वाले हो, दो टके के माल के सौ रुपये ऐंठ लिये"। यह सुनकर नवाब ने दारोग़ा को अपने पास बुलाया और उसके कान पकड़ कर कहा, "क्या हम नहीं जानते कि माल दो टके का है। लेकिन तुम हमारे उसके बीच आने वाले कौन होते हो।"

नवाब आसुफद्दौला के दौर में ही मुंशी साहब राय "साहब" नाम के एक शायर हुए हैं जो कि श्रीवास्तव कायस्थ थे। एक रोज़ जब कि नवाब के साथ "साहब" जी ऐशबाग़ फाटक पर पहुँचे तो क्या देखते हैं कि फाटक पर बने हुए शेर के खुले हुये मुँह में तोते ने अपना घोंसला बना लिया है और मज़े में रह रहा है। नवाब ये नज़ारा देखकर मुस्कुराये और उन्हें इशारा किया कि ज़रा आप भी ग़ौर फरमाइये इस पर "मुंशी साहब" फिलबदी यान पगैरन शेर फरमाया........

**"कुर्बान शाह के सदके, क्या अदल का निशां है**
**जो शेर के दहन में, तोते का आशियाँ है।"**

### अवध ख्वाजा सराओं का आलम

शुजाउद्दौला का खास ख़्वाजासरा जवाहर अली खाँ अब उसकी माँ नवाब बेगम की खिदमत में था। अज़ादारी के सिलसिले में जवाहर अली खाँ का नाम रौशन है। फ़ैज़ाबाद में उनका इमामबाड़ा और जवाहर बाग़ है। इसी जवाहर बाग़ की ज़मीन पर बहू बेगम का मक़बरा बना हुआ है। नवाब बेगम की महलसरा में महरूम अली खाँ, नाजिर मियाँ, शफकत मियाँ इत्तिफाक अली खाँ, जावेद अली खाँ आदि प्र्सिद्ध ख़्वाजासराओं का बोलबाला रहता था, उनके दो ख़्वाजासराओं.

......सुखनफ़हम और मियाँ दाना का कोई जवाब नहीं था, जिनकी निगरानी में 400 हथियार बन्द सिपाही चलते थे। जवाहर अली खाँ और आसफुद्दौला के ख़्वाजासरा हसन रजा खाँ में हमेशा जंग ठनी रहती थी जिस समय वारेन हेस्टिंग्ज के इशारों पर आसफुद्दौला ने अपने अहलकारों और ख़्वाजासराओं को फ़ैज़ाबाद की बेगम से जबरन धन वसूली के लिये भेजा तो ख़्वाजासराओं में जबरदस्त जंग छिड़ गयी। बहू बेगम के किले पर लगी तोपों के सामने तोपें लगाकर उनके तोड़े सुलगाये जा रहे थे। फ़ैज़ाबाद चौक के त्रिपोलिये पर लखनऊ के प्यादे चढ़ गये। घोड़ों की टापों से सारे शहर में धूल उड़ने लगीं। बहू बेगम का दबदबा ये था कि उनके मायके दिल्ली से बड़े-बड़े गोलन्दाज़ उनकी तरफ़ से मोर्चा के लिए फ़ैज़ाबाद में तैनात थे।

आसफुद्दौला का यह रूप देखकर और ऐसा पैग़ाम सुनकर नवाब बेगम ने अपनी बहू से कहा, "बीबी अब क्या कहती हो? अगर लखनऊ के नवाब से लड़ने का इरादा हो तो बिस्मिल्लाह कहकर हम दोनों सवार हो जायें। मगर डर है कि तुम्हारे बेटे को कुछ नुकसान न पहुँचे क्योंकि नवाब मरहूम शुजाउद्दौला के वक़्त के सिपाही और ख़्वाजासरा तुम्हारी औलाद से बेहद नाराज़ बैठे हैं।"

इतना कहना था कि बेगम फफक-फफक कर रोने लगी। "मेरे अल्लाह! ये कैसे कलाम हैं?......इस लम्बी उम्र में यही एक लड़का खानए-दिल का चिराग़ है। मुझे ये कब मंज़ूर होगा कि उसको सदमा पहुँचे।"

लेकिन सामने से वारेन हेस्टिंग्ज और नवाब आसफुद्दौला पशोपेश थे। महल में बैठी नवाब बेगम बोली "ऐ बीबी क्या लड़का जना है आपने कि फ़रार्शयों से मिलकर अपनी अम्मां-दादी को लूटने आया है, अब क्या देर है गोलन्दाज़ों से कहो कि लगा दे आग पलीते में"।

इशारा हुआ तो जवाहर अली खां का गुल अन्दाज़ ख़्वाजासाहब दिल्ली के गोलन्दाज़ के पास पहुँचा और उसने ताली पीटकार कहा "ऐ मियां लगा दीजिए पलीते में आग" अब देर किस बात की है"। उसके महल से निकलते ही बहू बेगम सिसकियां लेने लगी"।

"क्या करुं अम्मां हज़रत ये तो सही है लेकिन ख़ानदान में जो कुछ भी है चश्मौ चराग़ यही एक औलाद है। हम चाहें तो रक्खे, नहीं तो मौत चक्खे"।

नवाब बेगम ने बसन्त अली खां ख़्वाजासरा को इशारा किया था।

"जाइए मियां फ़ौज को रोकिए तोपें अभी ख़ामोश रहे"।

बसंत अली सरपट दौड़े गए और ताली पीट के ऐलान किया।

"ए ज़रा रुकिए, सदर बेगम का फ़रमान है जनाब, अभी हालात पर नज़र है"।

वो हुकुम के गुलाम दिल्ली के सिपाही फिर ठहर गए बस झल्ला के रह गए।

उधर लखनऊ की फ़ौज के क्लब बलवले देख के बहू बेगम बोली "ए क्या आंखों का पानी मर गया है अक़ल से पैदल हो गए मिर्ज़ा अमानी जो गोरों के हाथ की कठपुतली बन गए"।

जाइए जावेद मियां कहिए जंग जारी हो, जो होगा देखा जाएगा"।

जावेद मियां महल से निकले और मैदान में पहुंच कर फौजी जरनैल से ताली पीटकर बोले–

"बिस्मिल्लाह कहकर दागिए गोला अब कोई इनकार न हो"।

जावेद मियां अभी पहुंचे ही थे कि नवाब बेगम को गश आने लगा, कनीज़ो ने कुछ संभाला, बेगम पंखा झला मुंह पे गुलाब जल के छींटे दिए तो बोली ऐ बीबी, ये तो सब दुरुस्त हैं, फ़रज़न्द नालायक निकल गया और दुश्मनों से साज़िश करके सीने पर सवार है लेकिन हमारा क्या फ़र्ज़ है औरत का कलेजा तो कुछ और होता है ये क्या कि हम ही पैदा करें और हम ही खा जाएं। ऐसा तो डाइनें भी नहीं करतीं।

फलतः ख़्वाजासराओं को हुक्म हुआ कि लड़ाई का ये तमाशा अब बन्द किया जाये। जो मुग़ल बच्चे तोपें चला रहे थे, यह हाल सुनकर अपनी तक़दीर को रोने लगे कि काश आज हम किसी मर्द के नौकर होते तो ये हाल न होता। अन्दर से बीबियां बाहर हिजड़े और निशाने पर हम मर्द खुदा ये मुसीबत किसी पर न डालें।

●●●

# हुक़्क़े के शौक़ीन और फ़न के क़द्रदाँ–नवाब सआदत अली ख़ाँ

2

## नवाब सआदत अली खां का मुँह लगा हुक़्क़ा

अवध में एक पहेली मशहूर है :

नीचे जल की गागरी, ऊपर सर के आग,
गली बीच कोहराम है, निकला काला नाग।

इस पहेली को बूझ लेने वाले के मुँह से बेसाख्ता "हुक़्क़ा" शब्द ही निकलेगा दरअसल हुक़्क़ा एक ज़माने तक राजा रईसों के मुँह लगा रहा जो अमीर उमरावों के घर की जीनत बना रहा। इसे तम्बाकू पीने का सबसे नफ़ीस तरीक़ा समझा जाता था।

अवध के नवाब सआदत अली खाँ तो हुक़्क़े के इश्क़ में ऐसे गिरफ्तार थे कि उसके बिना उन्हें एक पल भी चैन नहीं था।

इसी गरज़ से उन्होंने कोठी फ़रहत बख्श से बाग़ दिलकुशा तक इमली के तमाम दरख़्त लगवा दिए थे, क्योंकि हुक़्क़े के लिए इमली के कोयलों की ही दरकार होती है। उनके वक्त में लखनऊ की सन्तान थे जिन्होंने शिया मज़हब अख़्तियार कर लिया था। उस्ताद कतील ने लखनऊ में ही अपनी मशहूर किताब "हल्फ़े तमाशा" लिखी थी। कतील साहब अपने घर से बहुत कम निकलते थे और दरबार की हाज़िरी तो उन्हें बिल्कुल ही नापसन्द थी। नवाब ने उनको कई बार अपने महल में देखना चाहा लेकिन वो इतने आज़ाद तबीयत के थे कभी न गये।

एक बार जब शाही फ़रमान भेजकर उन्हें इज़्ज़त के साथ कोठी फ़र्हतबख्श में बुलाया गया तो उस ग़ज़लनवीस ने साफ कहलवा दिया–

"हुजूर, मुझे आने में कुछ इनकार नहीं मगर मुश्किल ये है कि आपके पास तम्बाकू का ज्वालामुखी ज़रुर होगा और मुआ हुक़्क़ा मेरी बर्दाश्त के बाहर की चीज है। दूसरे आपके सिर पर दस्तार (पेंचदार पगड़ी) रहती है। उसके पेचोख़म में मेरा दिलो दिमाग़ उलझ कर रह जायेगा और शेर कहने की ताब ख़त्म हो जायेगी। तीसरे जनाब हर वक़्त जिन खुशामदियों व चमचों से घिरे रहते हैं मुझे

उनकी एक एक की शक्ल से नफ़रत है। क्या ये मुमकिन है कि सिर्फ आप और मैं इस तरह मिल सकें जहाँ ये तीनों मुसीबतें दरम्यान न हों।''

सआदत अली खाँ खुद बड़े अदीब थे और शेरो सुख़न के रसिया थे, इसलिए हँसकर तीनों शर्तों पर राज़ी हो गये और ''कतील'' को अपनी मुलाकात से माला माल कर दिया।

## फ़न की क़द्रदानी

इसी तरह की दूसरी घटना भी नवाब सआदत अली खाँ की है और उसी ज़माने की है नवाब के दरबार कस्रउल सुल्तान (लाल बरादरी) में एक से एक गुनवन्ता का मेला लगा रहता था। सैयद इन्शा अल्ला खाँ तथा अन्य योग्य रचनाकार के साथ तमाम शायर और फ़नकार वहाँ जमावड़ा लगाते थे मगर शहर में ख़्वाजा अमीर अली जो बड़े गवैये थे और अपने ही घर मर्सियाख़्वानी भी करते थे कभी कस्रउल सुल्तानी में तशरीफ़ नहीं लाये। एक बार बसन्त के मेले पर बहुत बुलाये जाने पर भी जब अमीर अली अपनी ऐंठ में तुनके रहे तो नवाब सआदत अली खाँ को बहुत बुरा लगा और उन्होंने कहला दिया, ''अमीर अली साहब अगर आप सैयद हैं तो मैं भी हाकिमे वक़्त हूँ और मेरे महल में तो सैयदों का हजूम रहता है। सैयद अमीर अली साहब अपनी तौहीन का ये आलम बर्दाश्त नहीं कर सके। और अपना साज़-ओ-सामान बाँधकर दक्खिन जाने का इरादा कर लिया। इन्शा अल्ला खाँ, जो अमीर अली के दोस्त भी थे और नवाब साहब के मुँह लगे भी, कोई सूरत ऐसी तलाशने लगे कि ऐसा गुनी आदमी शहर से बाहर न चला जाये। एक रोज़ सब सआदत अली खाँ बड़े इत्मीनान से फरहतबख़्श महल में एक हौज़ के किनारे पड़े सँगी तख्त पर बैठे तब इन्शा साहब ने उनके हुज़ूर में यह कसीदा पढ़ा–

**''दौलत बनी है और सआदत अली बना,**
**या रब बना बनी में हमेशा बनी रहे।''**

फिर कुछ रुक कर बोले, ''आलीजाह, अबरूए–अवध ये अभी जब फरहतबख़्श से चलने को हुआ तो दिल ने कहा अपने प्यारे नौशे की दुल्हन ज़रा नज़र भरकर देख लूँ''।

''तो हुज़ूर, सल्तनत बहू को वाक़ई बारह बरन (बारहबानी सोने के गहना से) में रंगी और सोलह सिंगारों में सजी पाया। देखो, सर पर झूमर है, वो कौन,

मौलवी दिलदार अली। माथे पर टीका देखा तो कौन राजा दया कृष्ण। कानों में दो झुमके पहले साहबजादे रफ़तुद्दौला और नसीरुद्दौला। गले में नौलखा हार देखा, वो हुसैन खाँ अलसमां। मगर मेरे आक़ा, जब ग़ौर किया तो नाक में नथ नहीं........या खुदा, जो इज़्ज़त का मक़ाम है वही उजड़ी चीज़ है या रब उसे क़ायम रखना।''

नवाब ने पूछा, ''वो कौन?''

इन्शा बोले, ''सरकार, अमीर अली साहब, जो लखनऊ छोड़कर जा रहे हैं।'' सुनते ही नवाब साहब बेतहाशा हँस पड़े और उनका मकसद समझ गये। फिर खुद ही अमीर अली की तारीफ़ करने लगे। बाद में उन्हें लखनऊ में रोक लिया गया और दो सौ रुपये माहवार उनकी तनख्वाह बाँध दी गयी।

सआदत अली खाँ में कोई दोष न था, सिवा इसके कि अँगूरी (शराब) पिया करते थे। और इस इकलौते शौक़ में अक्सर बुरी नौबत पहुँच जाया करती थी। नवाब साहब की दरबारी तवायफ़ का नाम 'उजागर' था। एक बार राजा टिकैत राय के निशान बाग़ (टिकैत राय तालाब के निकट) की बारादरी में वह उजागर का मुजरा देख रहे थे, आसमान पर चाँद खिला था और चाँदनी में नहाई जूही चमेली की झाड़ियाँ गमक रही थीं। नवाब अँगूरी के ख़ुमार में थे। गज़ब यह कि नाचने वाली वीरांगना से उन्होंने सामने की तरफ इशारा करके कह दिया कि जाकर उन बूढ़े की गोद में बैठ जाओ। वो मियाँ शहर के एक बुज़ुर्ग सैयद ख़्वाजा हुसैन चिश्ती के नाम से मशहूर थे। महफ़िल की जीनत ने जब दोनों पाजेबें उनकी तरफ बढ़ायी तो मियां ने हाथ के इशारों से उस गणिका को वहीं रोक दिया। मगर थोड़ी देर बाद नवाब को फिर वही मख़ौल सूझी। तीसरी बार जब उसे मजबूर किया तो वह बेचारी बड़े मियाँ के पहलू तक पहुँच गयी। उसी दम बड़े मियाँ आपे से बाहर हो गये। उसे धकेल कर उठ खड़े हुये और गरम आवाज़ में कहा, ''ख़बरदार, यह गोद मालज़ादियों के बैठने के लिये नहीं है इसमें शाहज़ादियों और वज़ीरज़ादियों ने बैठकर मुझसे तालीम पायी है ''फिर नवाब की तरफ मुख़ातिब हुये, ''शुजाउद्दौला के बेटे, तेरी ये मजाल। तेरे बाप और भाई का ख़्याल करके मैंने तुझे छोड़ दिया, वरना आज जाने क्या हो जाता। शायद तेरी शराब ने तेरी तहज़ीब से सौदा कर लिया है.......'' और फिर बारादरी से निकल गये। इस तू-तू-मैं-मैं-में मेंहदीगंज के पास वाले उस बाग़ की महफ़िल उजड़ गयी और होश आने पर नवाब बेहद शर्मिन्दा हुये।

# बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की सनका दिमाग़ी

3

इतिहास गवाह है कि अवध में ग़ाज़ीउद्दीन हैदर जैसा सनक दिमाग़ी बादशाह और आग़ामीर जैसा होशियार वज़ीर दूसरा नहीं हुआ। उन्होंने अपने हक़ और बादशाह के भोलेपन का बहुत फायदा उठाया। सूबे की सारी जागीरों की वसूली और तनख़्वाह की तक़्सीमी का कुल बन्दोबस्त आग़ामीर के हाथों में था। इसलिए हुकूमत और खज़ाने की करीब करीब पूरी कमान उनके करीब थी। इस इन्तज़ामकारी में उन्होंने ज़बरदस्त हेराफेरी की।

आग़ामीर ने एक करोड़ से ऊपर रुपया लगाकार अपनी महलसरा, सराय और कर्बला बनवायी थी। नवाब आग़ामीर की रईसी के बड़े बड़े रँग थे। उनका कलमदान लेकर आज़म अली चलते थे। ये दोनों मिलकर शहर में लोगों को तरह तरह से निचोड़ कर खूब खूब जेंबें भरते। आज़म अली की अमीरी का यह आलम था कि शहर भर की तवायफ़ें उनके नाम के घुँघरु बाँधती थीं, क्योंकि वह बाँका, नाच गाने की महफ़िलों में कौड़ियों की तरह रुपये लुटाता था।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर का एक बावर्ची उनके लिये रोज़ छह पराठे पकाया करता था उनके यह ज़ायक़ेमन्द और सेहत बख़्श पराठे मशहूर थे। वह रसोइया छह पराठों में तीस सेर देशी घी ख़र्च करता था। एक दिन वज़ीरे आज़म ने बावर्चीख़ाने का दौरा किया और अपने सामने पराठे बनवाये। उन्होंने देखा कि तीस सेर घी पका कर अपनी तरकीब से उसका भी सत खींचकर उससे छह पराठे सेंके गये और बाकी घी फेंक दिया गया। जब पूछताछ हुई तो बावर्ची ने जवाब दिया, "नवाब साहब, मैंने इस घी की जान निकाल ली है और अब ये नारियल का तेल रह गया है, इसलिये बादशाह के ख़ाने के काबिल नहीं रहा। "आग़ामीर ने हुक्म दिया कि अब एक सेर घी में सब पराठे बनाया करो। अगले रोज़ से बादशाह के दस्तरख़ान पर निहायत मामूली किस्म के पराठे पहुँचने लगे। उन्होंने दरागाये दस्तरख़ान को बुलाकर शिकायत की। जब सारी बातें खुली तो आग़ामीर की पेशी हुई। नवाब से आग़ामीर सफ़ाई में फरमाया "जहाँपनाह, घी हमने कम करवाया था, क्योंकि ये लोग खामख़्वाह आपको लूट रहे हैं। "इस पर बादशाह ने उन्हें दस पाँच थप्पड़ और घूँसे रसीद किये और कहा, "कमबख़्त, क्या तूने मुझे कम लूटा है। सारी सल्तनत और सारे मुल्क को निचोड़ कर तुम खा

गये और जो थोड़ा सा घी मेरी खुराक में लग जाता था वह तुम्हारी बर्दाश्त के बाहर हो गया''।

## आग़ामीर की करामात

एक बार शहर का एक भला आदमी दरबार में किसी काम के सिलसिले में आया। उसके अदब और आचरण से बादशाह बेहद खुश हुये। और आग़ामीर से कहा कि उस आदमी को सरकारी सेवाओं पर रखा जाये। नवाब आग़ामीर जानते थे कि उसके आने से उनके काले कारनामे खुल भी सकते हैं इसलिए बादशाह के बार-बार कहने के बावजूद वह बड़ी खूबसूरती से टाल गये और कह दिया कि वह आदमी शहर से बाहर चला गया है।

एक बार हुज़ूरे आला ने जब बहुत बेक़रारी से उसी आदमी का नाम लिया तो जवाब में आग़ामीर ने अचकन की जेब से मलमल का रुमाल निकाला और अपने दीदे पोंछने शुरू किये। बादशाह ने इसका सबब पूछा तो बोले ''हुज़ूर अच्छे आदमी को हर जगह पूछा जाता है। जिसकी आपके दरबार में भी थी और वह गरीब खुदा को प्यारा हो गया।''

कुछ दिनों बाद जब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर अपने वज़ीर मुसाहिबों के साथ शाही सवारी पर शहर घूमने निकले, तो उन्होंने दूर से ही उस आदमी को पहचान लिया और हुक्म दिया, ''आग़ामीर, उस आदमी को बुलाओ जो बाग़ की तरफ जा रहा है।''

आग़ामीर ने उधर देखा तो उनकी जान सूख गयी क्योंकि यह वही आदमी था जिसे वो जन्नतनशीन बता चुके थे। वज़ीरे आलम ने एक पल में मौके की नज़ाकत समझी और न जाने किन आँखों से अपने कुल मुसाहिबों को कैसा इशारा कर दिया कि सब उनके पढ़ाये हुये तोते बन गये।

अब आग़ामीर ने बड़ी मासूमियत के अन्दाज़ से पूछा आलीजाह, ''वह कौन है और कहाँ है?''

बादशाह ने ऊँगली उठाकर कहा, ''वो है, वो है''।

इसके साथ सारे मुसाहिबों की सूरत पर सवालिया निशान खिंच गये, ''कहाँ-कहाँ हुज़ूर कहाँ-कहाँ हुज़ूर कहाँ? सब बोल उठे।

''कहाँ है, कहाँ है ''के जुमले जब दो तीन बार दुहरा लिये गये तब हँस कर आग़ामीर ने बादशाह को सलाम किया और कहा ''मैंने कितनी बार अर्ज़ किया है

कि जनाब को अल्लाताला ने लिबासे करामात ज़ाहिरी (प्रकट) और बातनी (अप्रकट) से आरास्ता फ़रमाया है। आपके पास सरकार चश्मे ग़ैब (अलौकिक दृष्टि) है, आपको इन्सान और रुहें सब कुछ दिख सकती हैं, मगर हम गरीबों को कहाँ''। और बादशाह आख़िरकार चुप हो गये।

## बादशाह की दानशीलता

बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर अवध के पहले छत्रपति थे, जिन्होंने नवाबी में पगड़ी उतारकर ताज पहना था। वह बड़े नेक नीयत इन्सान थे, जिन्होंने अपने पास से दहेज देकर सैकड़ों गरीब घर की बेटियों की शादियाँ करवा दी थीं।

एक रोज़ सुबह वो गोमती के किनारे हवा खाने निकले तो एक गरीब दुखियारी बेवा अपनी जवान कुँवारी लड़की को लिये सरे राह खड़ी थी। चाँद सा बदन, वह अपने मैले फटे कपड़ों से किसी कदर ढक नहीं पा रही थीं। बादशाह का तामजान वहीं रुक गया और उन मुहताज माँ बेटियों के नज़दीक जाकर उनसे उनकी मुश्किल व मुराद पूछी।

उसी दिन छत्तर मंज़िल में पहुँचते ही बादशाह ने अपने वज़ीर मोतमुदद्दौला आग़ामीर को हुक्म दिया कि खज़ाने से 500 अशर्फ़ियाँ उस अनाथ के घर सूरज डूबने से पहले पहुँचा दी जायें ताकि वह ग़रीब अपनी बेटी के ब्याह की तैयारियाँ शुरु कर दे। रुपये में तीन अटठन्नियाँ भुनाने वाले वज़ीर नवाब आग़ामीर को इतने धन का एक निर्धन के घर अचानक पहुँच जाना बहुत खटका। उन्होंने नवाब की नवाबी का नशा उतारने के लिये एक चाल खेली। शाम होते होते जब शाहे अवध अपने महलसरा से निकल रहे थे आग़ामीर ने वो 500 सोने के सिक्के दहलीज़ के फ़र्श पर बिछवा दिये ताकि बादशाह की निगाह में आये कि एक मामूली इन्सान के लिये यह रक़म किस क़दर ज़्यादा है।

मगर जब बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की निगाह पड़ी तो उन पर कुछ उलटा ही ही असर हुआ। संगमरमर के चौकों पर बिखरी हुई वो अशर्फ़ियाँ उन्हें बहुत कम महसूस हुई, और यह कहते हुए वो अपने सुखपाल पर बैठ गयेः–

''मोतमुदद्दौला, शादी के हक़ में यह रक़म बहुत कम है। इसे हमारी तरफ से दूना कर दिया जाये। ''चार कहार सुखपाल को कन्धे पर लेकर बारादरी की तरफ चल दिये और वज़ीर मियाँ देखते खड़े रह गये।

## नवाब आग़ामीर के फर्ज़ी जलवे

लखनऊ में चारबाग से मेडिकल कालेज के रास्ते में ड्योढ़ी नवाब आग़ामीर

नाम का एक मशहूर मोहल्ला पड़ता है। यहाँ एक तरफ़ उसी नाम से पुलिस चौकी है तो दूसरी तरफ़ राजा बाज़ार की बेहरतीन आबादी है। पुलिस चौकी के पीछे सारी आराज़ी आग़ामीर ड्योढ़ी की है जहाँ उस ज़माने के कुछ आसार चाँदी ख़ाना, गढ़ैया, बाग़ शेर जंग तक चले गये हैं। उन्हीं इमारतों में राजकीय जुबली इण्टर कालेज है और पुराने नवल किशोर प्रेस की कुछ पहचानें भी अभी बाकी है।

नवाब आग़ामीर अपने बचपन के दोस्त मिर्ज़ा रफ़तउद्दौला याने अवध के प्रथम बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के ख़ास वज़ीर बने।

नवाब आग़ामीर के लटके झटके दुनिया से निराले थे। शानदार व्यक्तित्व, उम्दा पोशाक, रोबदारी की हनक, बुलन्द आवाज़ क्या कुछ नहीं था उनके पास, लखनऊ में उनकी मरज़ी के बिना एक पत्ता भी नहीं डोलता था। कुछ अरसे तक वो कोठी नूर बख़्श (वर्तमान ज़िलाधिकारी निवास) में भी रहे है।

दिन-रात चाँदी वसूलने वाले नवाब आग़ामीर के साथ एक लड़का हथेली पर कलमदान लेकर चलता था जिसके कान पर क़लम रखा रहता था जहाँ जिसका जो मामला होता था सब अपने इसी चालू दफ़्तर से निपटाते चलते थे।

अगले बादशाह के अहद में जब नवाब आग़ामीर के शाही ओहदे बरखास्त हो गये तो उन्होंने अपनी कमाई का एक नया ज़रिया निकाला। चौक और उसके आसपास के इलाक़ों में अपना कलमदान लौंडा लेकर पहुँच गए। एक आतशी शीशे से से कुछ देख रहे हैं और कोई बेचैन होकर पूछता कि ''सरकार, क्या माजरा है, ये पैमाइश कैसी है''।

अब नवाब आग़ामीर हैं कि न बोल रहे हैं न मुँह खोल रहें हैं, बहुत पूछने पर बस इतना ही कह देते ''नहर निकलेगी नहर निकलेगी'' जो भी ये बात सुनता, सुनते ही सन्न रह जाता। चारों तरफ सर्राफ में, बजाजे में, बिसातख़ाने में हलचल मच गयी कि ये क्या गज़ब है। अगर ऐसा मुमकिन हुआ तो हम तो लुट जायेंगे। लोग विनती करने लगे कि ''अरे मालिक ऐसा सितम न हो वरना हम लोग तो कहीं के न रहेंगे। इसके बाद कुछ कानाफूसी हुई और फिर रिश्वत की रक़म तोड़े (चाँदी के रुपयों से भरी थैलियाँ) नवाब की नज़र होने लगे कि मियाँ किसी भी तरह अपने इरादे को वहीं का वहीं दफन करवा दें।

ग़रज़ ये कि कुछ दिनों तक इसी तरह आग़ामीर हर शाम अपनी तनख़्वाह से कई गुना ज़्यादा रुपया वसूल के घर आते रहे। बाद में इसी बिना पर वो अवध से निकाल कर कानपुर में उतार दिये गये और फिर वहीं वो जिए, वहीं मरे और वहीं वो दफ़न हैं।

# बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के सनके शौक़

4

जब वज़ीरे आज़म नवाब रौशनउद्दौला के बड़े भाई मोहम्मद अब्बास साहब ज़्यादा शराब पी जाने की वजह से अल्ला को प्यारे हो गये तो बादशाह ने घबराकर कान पकड़ लिये और शराब उसी दिन छोड़ दी। औलाद की तमन्ना में नसीरुद्दीन हैदर ने लोगों से सुन सुन कर फ़कीरों, दरवेशों के मज़ार पर भी जाना शुरु कर दिया था और इस तरह उन्होंने अपने इमामिया बुज़ुर्गों के ईमान की खिलाफत भी की थी। लखनऊ में उन दिनों शाह कुतुब आज़म का सूफी खानदान मशहूर था। एक जमाने में जब उनके चाचा ख्वाजा हुसैन में दाखिल हुये तो नवाब आसफुद्दौला ने अपने मज़हब के तकाजे से उनको दीने शिया के ख़िलाफ़ समझा था। नवाब सआदत अली खाँ भी उन्हें नहीं मानते थे मगर रौशनउद्दौला के कहने पर नसीरुद्दीन हैदर, शाह कुतुब के भी मुरीद हो गये थे। हाँ, जब इसके बावजूद औलाद का मुँह देखना उन्हें नसीब नहीं हुआ तो उन्हें दरगाहों के नाम से भी नफरत हो गयी थी।

बादशाह किसी हद तक अपने मूड और अपनी सनक के शिकार होकर कभी कभी बड़ा ग़ज़ब कर उठते थे। एक बार शहर में वर्तमान हज़रतगंज में रहने वाले मेडूँ ख़ाँ रिसालदार के बेटे की बारात आ रही थी जिसके साथ उस समय के रिवाज़ से नौबत और नक्कारे बज रहे थे। बारात जब महल के पास से गुज़री तो उस समय वह अपने दीवान-खाने में शराब नोशी कर कर रहे थे। उन्होंने अपने वज़ीर से पूछा कि....''ये कौन बेअदब शहर में शोरगुल मचा रहा है। ''लोगों ने समय की नज़ाकत समझते हुये उन्हें लाख समझाया कि किसी के सिर पर सेहरा बंधा है और उसी की बारात जा रही है। मगर बादशाह इतना पिये हुये थे कि सब उल्टा समझे और नशे के आलम में ही दूल्हे से एक हज़ार रुपये हर्जाना वसूल किये जाने का हुक्म जारी कर दिया साथ ही यह भी हुक्म जारी कर दिया कि किसी बारात में अब बाजा नहीं बजेगा। उसके बाद शादियों में बाजा बजाने का रिवाज़ बन्द हो गया जो उनके मरने के बाद ही अमल में आया।

**नवाब की शिकार कथा :**

बादशाह धीरे-धीरे अपने वज़ीरों में इस कदर घिर चुके थे कि उनके लोग उनकी विलासिता और व्यसनों का पूरा लाभ उठा रहे थे। एक बार बादशाह पर अचानक शिकार खेलने का जुनून सवार हुआ। इस शाही शिकार को खेलने के लिये तीन लाख रुपये खर्च करने का इन्तज़ाम हुआ। बादशाह को इस फ़न में कितनी महारत हासिल थी। ये बात तो उनके सब मुसाहिब पहले से ही जानते थे। गरज यह कि नसीरुद्दीन हैदर अपनी आन बान और पूरी शान के साथ महल से शिकार के लिये निकले। एंग्लो इण्डियन कबीला हाथी पलटन और गाजे बाजे के साथ शहर के बाहर चिनहट की ओर बढ़ा। उस बारात में बादशाह के साथ उनके चन्द चुने हुये दोस्त जैसे कैप्टन मैगनस चुटकुले बाज़ उनकी दिलजोई के लिये, तो डाक्टर फ्रेचरर किसी नागहानी के वास्ते दवा मरहम लेकर चले। बादशाह का फ्रेंच नाई उनके बालों और खूबसूरती के रख रखाव के लिये साथ हो लिया तो लाइब्रेरियन क्रूप्ले ख़ाली समय में सुनाने के लिए कुछ बेहतरीन किताबें लेकर चला। यही नहीं उनके प्रिय चित्रकार माट्ज साहब भी रंग और कूचियाँ लेकर चले कि वो इस ऐतिहासिक शिकार का बेशक़ीमती नज़ारा पेन्ट करेंगे। इन जेन्टिलमैंनों के अलावा और तमाम अंग्रेज मेहमान थे।

रिसालदार अपने फ़ौजी निशानों के साथ हिफ़ाज़त के लिये घुड़सवार पलटनें लेकर चल रहे थे। पीछे पालकियों में मलका जमानी, मुमताज़ उलदहर जैसी शौक़ीन बेगमें अपनी कनीज़ों के संग थीं। देहाती लोगों ने बड़ी हैरत और ख़ुशी के साथ रास्ते में शिकार की इस बारात का स्वागत सम्मान किया।

चिनहट की कठौता झील के किनारे नवाब आसफुद्दौला की मशहूर बारादरी में डेरा पड़ गया। वहीं आस पास ख़ेमे लगा दिये गये। पुलाव पकने लगे और कबाब सेंके जाने लगे। पहली शाम को बादशाह ने मुर्ग़ाबियों का शिकार खेलने की तमन्ना की। अब क्या था, झील के किनारे कनातें लग गयीं। एक कनात में बादशाह को अंग्रेज दोस्तों के साथ शानोशौक़त के साथ बिठा दिया गया दूसरी तरफ चिलमनों के पीछे बेगमों का मजमा था।

ग़ालिब जंग का यह इन्तज़ाम था कि वो 500 शिकारी बाज़ पिंजड़े में शहर से लाकर झील पर छोड़ दिए गए थे ताकि पानी की सतह से ऊपर उड़कर जाने वाली चिड़ियों को वे रोके रहें और ऊपर जाने से मोहताज वो ग़रीब चिड़ियां

किसी न किसी सूरत बादशाह की गोली खाने को मजबूर हो जायें। उसके साथ ही 15-20 देहाती मछेरे झील के पानी में चारों ओर खड़े कर दिये गये कि वे गोली खाकर गिरने वाली चिड़ियों को फौरन पानी में तैर कर निकाल लायें और बादशाह के हुज़ूर में हाज़िर करें। यह बात और थी कि उनकी धोती के फेटे में दो दो तुरन्त की मारी मुर्ग़ाबियाँ पहले से ही बँधवा दी गया थीं।

जब हर तरह की पेशबन्दी हो चुकी तब चारों तरफ से एक दुहाई हुई और उसी के साथ वज़ीर नवाब रौशनउद्दौला ने अर्ज किया कि "आलीजाह, अब देर किस बात की है, अपनी इटालियन गन का ख़ूँरेज हमला कीजिये क्योंकि ये नावकार पंछी आपके हाथों क़त्ल होने के लिये बेक़रार हो रहे हैं।" बादशाह के चेहरे पर ख़ुशी की चाँदनी फैल गयी और उन्होंने तुरन्त एक फ़ायर किया।

बस अब क्या था एक ही पट्टी के पढ़ाये हुये सब कारिन्दे पानी में कुछ देर बेवजह उछले कूदे फिर सबक के मुताबिक वो सारे मछेरे हाथों में अपना अपना शिकार थामे बादशाह के आगे उसे पेश करने लगे।

अब मज़ा यह कि हर आदमी शाहे अवध के आगे दो दो मुर्ग़ाबियाँ लिये चला आ रहा था जैसे कि एक फायर से तीस से ऊपर चिड़ियाँ एक साथ ढेर हो गयी हों।

ये नज़ारा देखकर बादशाह का सिर चकरा गया। उन्होंने अपने दोस्तों के चेहरे पढ़े और फिर मुसाहिबों को देखा...."कमबख़्तों, यह क्या तमाशा है? इतने परिन्दे एक साथ हालाक़ हो गये, मैंने सिर्फ एक गोली ही चलायी थी।"

नवाब रौशनउद्दौला ने वक़्त की नब्ज़ देखी और फौरन पैंतरा बदलकर बड़ी नफ़ासत से सलाम करके बोले...."हुज़ूर, इसमें क्या शक़? ये शाही शिकार था कोई निशानेबाज़ी नहीं। क्या अजब जो आपके हाथों एक फ़ायर में इतने परिन्दे ज़रब खा गये क्योंकि कुछ एक, वार खाकर मरे होंगे तो कुछ उस वार की दहशत में दम तोड़ गये होंगे।

## महल की बागडोर-धनिया महरी का दबदबा

मशहूर है कि अवध के दूसरे बादशाह नसीरुद्दीन हैदर अपनी ख़ासमख़ास धनियां महरी के सिवा और किसी के जगाये नहीं जागते थे। सुबह सबेरे कनीज़ों की एक पलटन लेकर धनियां उनके शाबिस्तान में दाख़िल होती थीं उन

ख़ादिमाओं के हाथों में रंगीन फूलों के गुलदस्ते, महकदार गजरे, चाँदी के गुलाब पाश, अगर-लोबान के झँझारे, मोरपंखी चँवर, रेशमी रुमाल और मीठी आवाज़ों वाले साज़ हुआ करते थे। इन्हीं नाज़वालों के नाज़ुक हथियारों से बादशाह की नींदे ग़ज़ब पर हमला होता था और वे सत्तर नख़रों के बाद आँख खोलते थे। इस छेड़छाड़ में बादशाह कभी कभी चन्दन की एक छड़ी से धनियाँ को मारते भी थे।

एक दिन धनियाँ महरी ने बादशाह से कहा, "साहबे आलम, ये सूरत हराम छड़ी आपके सुल्तानी हाथों में ऐसी बेजा मालूम होती है जैसे कमख़ाब के लहंगे पर टाट का पैबन्द। हुज़ूरे आला, ये छड़ी अगर मोतियों से जड़ी होती तो कुछ आपके हाथों की जीनत बनती"।

बादशाह को यह बात जँच गयी और उसी दिन शाही सुनारों को हुक्म हुआ कि चौक के जौहरियों से जवाहरात लेकर कुछ जड़ाऊ छड़ियाँ तैयार की जायें। अब क्या था, छड़ियों से सैकड़ों मोती और हज़ारों के लाल टाँके जाने लगे। मज़ा तो ये कि अब जो भी छड़ी बादशाह धनियां को छुआते थे वो अपनी होशियारी से उस छड़ी को हथिया कर ही छोड़ती थी और वो सब छड़ियाँ उसकी अमानत बन गयीं फिर भला क्यों न लखनऊ की वो ख़वास शहर के रईसों की सरगना बन जाती जिसके नाम की मस्जिद मौलवीगंज में, इमामबाड़ा गोलागंज में और पुल आलमनगर में बन गये। ब्रिटिश म्यूज़ियम में उन जड़ाऊँ छड़ियों में से एक आज भी मौजूद है।

धनियां महरी नसीरुद्दीन हैदर की सबसे मुँह लगी ख़्वास थी। उसकी चतुराई ने बड़े-बड़े महारथियों को चटनी चटा दी थी और यही वजह थी कि रेज़ीडेन्ट अवध की निगाह में शायद दौलत सराए सुल्तानी की किसी बेगम की उतनी कद्र नहीं थी, जितनी कि धनियाँ महरी की।

एक बार किसी विदेशी पर्यटक ने दरबार में आकर बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की विलासिता और कमताबी का मज़ाक उड़ाया। अंग्रेज मेहमान की उस बात का जवाब धनियाँ महरी ने बड़ी खूबसूरती से दिया था। उसने कोठी दर्शन विलास से नूरबख़्श कोठी के बीच कतार से लगे हुये इमली के दरख़्तों के नीचे सात शेरों के फ़ौलादी पिंजरे रखवा दिये। कांगड़ा घाटी और लखीमपुर तराई से लाकर पाले गये ये शेर, धनियाँ महरी से उसी तरह सधे हुये थे जैसे सरकस की धानपान लड़कियाँ ख़ूँखार जानवरों पर काबू रखती हैं। उसने बादशाह से

बनवाकर तवायफें बसा दीं। शहर में धूमधाम से उसकी सवारी निकलती थी और उस वक़्त वह अच्छे अच्छों के सलाम लेने लगा था।

एक बार जब वो हाथी पर सवार चाँदी के हौदे पर बैठ कर गोलागंज से गुजरा तो एक राह चलता मनचला पठान ज़ोर से चीख़ा, "सुनो लोगों, अगर तुममें से कोई दर्ज़ी हो तो ख़ुदा के वास्ते मेरे पायजामे का बन्द टूट गया है उसमें आ के दो टाँके मार दे। मक्का को मतलब समझने में देर न लगी। हाथी पर से उतरा, अपनी पगड़ी में से सुई निकाली, चार टाँके लगाये और लौट गया। बाद में उस दर्ज़ी की मक्कारियाँ और बदतमीज़ी इतनी बढ़ गयीं कि बादशाह तक शिकायतें पहुँचने लगीं। कुछ इल्ज़ामों पर हुकूमत ने उसे क़ैद कर वापस ख़ैराबाद भेज दिया और इस तरह चार दिनों की चाँदनी खत्म हो गयी।

●●●

# अवध के तीसरे बादशाह मुहम्मद अली शाह की नादान तबियत

5

सन् 1837 में जब मुहम्मद अली शाह को अवध की बादशाहत मिली तो उनको एक जंगी विलायती कुत्ता नज़राने में मिला। उन्होंने उस कुत्ते पर दो ख़ादिम रख दिये और साथ ही यह हुक्म हुआ कि एक रुपया रोज सिर्फ उसकी मेवाख़ोरी पर जाये (जबकि उस जमाने में दो रुपये में एक आदमी महीने भर खाता था)

इतनी शान शौकत और ख़ातिरदारी के बावजूद वह कद्दावर जानवर अपनी नस्ल की आम आदत के मुताबिक रात को हर आहट पर भौंकता रहता था जिससे कि बादशाह की नीदें हराम हो जाती थीं। उन्होंने अपने वज़ीरों से कुत्ते की बेहूदी आदत पर किसी तरह पाबन्दी लगाये जाने की बात की तो कुत्ते के लिए नियुक्त एक दरबारी ने अपनी नेक सलाह ज़ाहिर की कि अगर एक सेर गुलकन्द और एक बोतल गुलाबजल उस बेढब चौपाये को रोज़ खिला पिला दिया जाये तो शायद वह कुछ कम भौंके और फिर अगर भौंकेगा भी तो ज़रुर कुछ सुर में भौंकेगा, क्यों कि रफ़ता रफ़ता उसके गले में मिठास शामिल होती जायेगी। गरज यह कि हुक्मेशाही इस वास्ते लागू हो गया।

उसके बाद से उस कुत्ते को सरे शाम से महल से कहीं दूर ले जाकर बाँध दिया जाता और सुबह ड्योढ़ी के दरवाज़े पर लाकर खड़ा कर दिया जाता था। मज़ा तो यह कि सन् 1840 में वह कुत्ता मर भी गया, मगर 1842 में बादशाह अमजद अली शाह के वक़्त तक उसके नाम से एक सेर गुलकन्द और एक बोतल गुलाबजल दरबारे अवध की तरफ से बँधा रहा।

लखनऊ में हुसैनाबाद परिसर की भव्य इमारतों का निर्माण अवध के तीसरे बादशाह मुहम्मद अली शाह ने किया था। वह गोमती नदी के किनारे अपने महल में रहते थे। दरिया के उस पार तमाम खेत थे जिनसे आगे बढ़ा जाये तो घना जंगल था। जाड़े की ऋतु में रात का सन्नाटा बहुत बढ़ जाता था ऐसे में जंगल से निकल कर सियार खेतों में आ जाते थे और "हुक्की हुआ" "हुक्की हुआ" चिल्लाने लगते थे। ऐसे में बादशाह की नींद टूट जाती थी और वो बेचैन हो जाते थे। उन्होंने फिर अपने मुसाहिबों को बुलाकर दावत दी और मशवरा किया कि "आख़िर ये कौन सी नसल है और इनकी मंशा क्या है?"

मुसाहिबीन अव्वल दरजे के शातिर ख़ुदगर्ज़ और अक्सर धोखेबाज़ हुआ करते हैं। उनमें से एक ने बल खा के सलाम अर्ज़ किया और बोला–"ऐ हुज़ूर वो जो भी है आपकी रैयत में है, दरअसल सर्दियों के सताये हुये हैं और आप से इमदाद की उम्मीद कर रहे हैं"। (सहायता) बादशाह एक दम से बेकरार हो गये और बोले "फिर इस नेक काम में तारवीर (देर) कैसी?

मौक़ा देख के दूसरा गुर्गा बोला......

"आली जाह मेरे ख़्याल से उन ग़रीबों को कम्बल बँटवा दिये जायें। उनका भला होगा और आपको सबाब (पुण्य लाभ) मिलेगा"।

गरज ये कि हुक्म हुआ और ख़ज़ाने की रक़म से पाँच सौ कम्बलों का तमाम ख़र्च उन नमक हराम चमचों के हवाले कर दिया गया जिसे वो उजले चोर बाँट कर खा गये। रातें जैसी थीं वैसी ही बेआराम रहीं। सियार सारी सारी रात गजरदम तक उधम मचाये रहे। और फिर जब बादशाह के कान में वो फटी आवाज़ें पड़ी तो बादशाह को तआज्जुब हुआ ये क्या माजरा है।

बहरहाल फिर बैठक बुलायी गयी और ये मसला सामने पेश हुआ कि जब रक़म दे दी गयी और वो सभी कम्बल पा चुके तो फिर नींद क्यूँ हराम कर रहे हैं और उसी तरह क्यूँ कयामत बरपा किये हुये हैं।"

अगला मुसाहिब लहरा के उठा पहले तो एक कोर्निश बजाई (झुककर सलाम) और फरमाने लगा "बन्दापरवर, ये आपकी जलवागरी है और कुछ नहीं उन बदनसीबों को आप की तरफ से कम्बल नसीब हुये और अब वो आपको दुआ दे रहे हैं। शुक्रिया कह रहे हैं, और दुनिया तक इसकी खबर पहुँचा रहे हैं" और फिर "कुर्बान जाऊँ "कह के मुसाहिबीन एक साथ सलाम करने लगे।

## मलका जहाँ–पोदीने वाली बेगम

अवध के चौथे बादशाह मुहम्मद अली शाह की एक बेगम मलका जहाँ बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति की नेक महिला थीं इसलिये उन्होंने अपनी कुल आमदनी और ज़ायदाद का अधिकतम उपयोग मज़हबी इमारतों के बनवाने में या तीर्थ यात्रा में किया। इस सिलसिले में उन्होंने 10 लाख रुपये ख़र्च किये जो उन्हें बादशाह की तरफ से मिले थे। ऐशबाग लखनऊ में मलका जहाँ की मशहूर करबला है। रामलीला मैदान से लगी हुई इस करबला को उन्होंने दरोगा आसफ अली से

ख़रीदा था, बाद में उस करबला का काफी विस्तार किया गया। करबला और उसके साथ की इमारतों का पूरा निर्माण मलका जहाँ बेगम के बाद उनके एक ख़वास दरोगा ने उनके ही नाम से करवाया।

मलका जहाँ की करबला में हज़रत अब्बास के रोज़े की शबीह छोटे हज़रत के अलावा उनके बड़े भाई हसन अस्करी साहब के रोज़े की शबीह भी है, जो "बड़े हज़रत" के नाम से पुकारी जाती है। इन ईराक़ शैली की इमारतों के झुण्ड के साथ आज भी ऐशबाग में मलका जहाँ की करबला शियों का प्रसिद्ध कब्रिस्तान है।

सन् 1842 में विधवा हो जाने के बाद नवाब मलका जहाँ बीस बरस तक लखनऊ में ही रहीं। सन् 1861 में वह लखनऊ छोड़कर करबला मुअल्ली के लिये चल पड़ीं। उन्होंने उस समय बादबानी जहाज़ से तीर्थ यात्रा की थी। उनके साथ बहुत से ख़ादिम, ख़वास, नौकर और घोड़े वगैरह थे, इसलिये सैकड़ों आदमियों का यह काफिला कई जहाज़ों से करबला पहुँचा था।

उन दिनों ईराक़ में टर्की की हुकूमत थी। जब नवाब मलका जहाँ बसरा पहुँची तो उन्हें ग्यारह तोपों की सलामी दी गयी। बसरा से जब काफिला आगे बढ़ा, तो सुनसान इलाक़े में बददुओं ने उनके हाथ के हीरे जवाहरात लूटने की ग़रज़ से उन सबको रोक लिया। अवध की मलिका उस वक्त महमिल (ऊँट की पीठ पर बँधी हुई पालकी) में बैठी थीं। उन्होंने लुटेरों से कहा, "तुम लूटकर कुछ भी न पाओगे, वैसे जो कहोगे वह हम ख़ुशी से तुमको दे डालेंगें" और ये कहकर उन्होंने मालोजर के तोड़े खुलवा दिये। ये सुलूक उन बददुओं के लिये बड़ा नया और अजीब था। उन सबने सिर झुकाकर बेगम का सम्मान किया और कहा, "जब तक आप ईराक़ में रहेंगी हम लोग आपकी हिफ़ाज़त करेंगे"। उनके साथ ही वे सबके सब उनके नौकर हो गये।

मलका जहाँ हिन्दुस्तानी खाने की बेहद शौकीन थीं, जिसमें पोदीने की चटनी उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी थी। परदेश में उन्हें पोदीना कहाँ से मिलेगा? इस गरज से पोदीना के छोटे छोटे खेतों ने पहले पानी के जहाज़ पर यात्रा की और फिर मलका के साथ ऊँटों की पीठ पर चलते थे। यह खेत रेगिस्तान इलाक़े में भी बाक़ायदा मशक से सींचे जाते थे। यही वजह है कि नवाब मलका जहाँ, पोदीने वाली बेगम के नाम से भी मशहूर हैं।

# नवाब वाजिद अली शाह के अजीबो-ग़रीब शौक़

6

## जाने आलम के दरबारी रंग

13 फरवरी सन् 1847 को जब वाजिद अली शाह तख़्ते हुकूमत पर बैठे, तो ऊपर से लेकर नीचे तक के दरबारियों को ओहदे मिले और बेगम से लेकर बाँदी तक को ख़िताब अता होने लगे। इसी बसन्त बहार में मुहम्मद हुसैन अली खाँ ख़्वाजासरा को भी ''दयानतउद्दौला'' बना दिया गया। उसके रहने के लिये दुमंज़िला मकान, सफर के लिये घोड़ा पालकी, ख़र्च के लिये मोटी रक़म और ताबेदारी के लिये खिदमतगार दिये गये। अपने धन और अपनी धूम की उस चढ़ती दोपहरी में उसे भी ताजदाराने अवध की तर्ज़ पर एक शिया ज़ियारतगाह बनवाने की सूझी। चूँकि नूरबाड़ी ख़्वाजासराओं का गढ़ था, इसलिये उसने उसी के मरकज़ पर इस कर्बले को बनवाया। इसमें कोई शक नहीं था कि लखनऊ के इतिहास में बहुत अधिक कर्बले बने हैं जैसा हिन्दुस्तान के और किसी शहर में न हुआ होगा। दयानतउद्दौला की कर्बला उन सब में बेजोड़ है। इस इमारत में लकड़ी के सतूनों पर काँच की जड़ाई का काम देखने योग्य है तथा छत की शहतीरों पर जो बेहतरीन बेलबूटे बने हैं, उनके रंग आज भी दीवारों का दामन छोड़कर उड़ नहीं सके हैं।

जब दयानतउद्दौला ने अपनी करबला की सजावट पूरी कर ली तो छत्तीस मंज़िल में जाकर बादशाह को आदाब बजाया, वो बेहद खुश हुये और उसे मुबारकबाद दी, साथ ही महलसरा में इस बात के चर्चे होने लगे कि अब इस करबले की ज़ियारत के लिये सबको जाना चाहिये। गरज ये कि तमाम शाही लश्कर क़ैसरबाग से कूच की तैयारी में लग गया। हाथी, घोड़े, रथ, पालकी सजने लगे और खवासें एक महल से दूसरे महल में दौड़ने लगीं। अगले रोज़ इस इरादे का पता जब वज़ीरख़ास मदारुद्दौला सैय्यद अली नकी ख़ाँ को मालूम चला तो उनके होश गुम हो गये। उन्हें शहर के उस इलाक़े की सड़कों का हाल मालूम था। उन्होंने दयानतउद्दौला को बुलाकर कहा–

''मियाँ तुमने तो ग़ज़ब कर दिया, क्या तुम्हें मालूम नहीं था कि इस मंज़िल के सिर्फ दो ही रास्ते हैं। पुल ग़ुलाम हुसैन वाले रास्ते की तरफ से मकानों के

बीच छत्तेदार पुल बने हुये हैं, जिसकी तरफ़ से बादशाह का हाथी गुज़र नहीं सकता और दूसरी तरफ़ रुस्तमनगर वाली दरगाह से लेकर इस नयी कर्बला तक घण्टा बेग की गढ़ैया भरी हुई है, जिस पर से शाही सवारी का गुज़रना मुश्किल होगा। इस तरह तुमने बादशाह सलामत की नहीं बल्कि सबकी क़यामत को नवेद दिया है। ''बात की नज़ाकत समझ आते ही शाही प्रबन्धकों में सनसनी दौड़ गयी तीर जो था वो कमान से बाहर था यानी शंहशाही इरादा किसी सूरत में रोका नहीं जा सकता था। इसलिये सरे शाम से वज़ीर, अहलकार, कारीगर और मज़दूर मौके का मुआयना करने लगे। सारी रात खच्चरों की पीठ पर मिट्टी ढुलती रही। सबेरा होते ही घन्टा बेग की गढ़ैया पाटी जा चुकी थी, जिस पर से दिन बढ़े शाहे मरातिब निशान वाला हाथी अपनी शान से गुजरा और परदेदार पालकियों का काफिला कर्बले तक पहुँच गया।

सन् 1854 की बात है, लखनऊ के एक ख़ानदानी सैय्यद मेंहदी हसन हिन्दवी, ईराक़ की कर्बला मुअल्ला में बीस साल मुजाविरी करने के बाद लौटे थे जब परदेस छोड़कर अपने देश आने लगे, तो एक ज़री ख़ास वहाँ से बतौर निशानी लेते आये और उसे लेकर वो इसी सुनहरे गुम्बद वाली कर्बला में उतरे।

दरबारे अवध में जब इस ख़बर की ख़ुशबू पहुँची तो लोगों ने शाहे-पंजुम से फ़रमाया... ''आली जाह, फ़क़त आपके वक़्त में ही ऐसा मुबारक मौक़ा मुमकिन हुआ है कि एक पाक ज़री फ़रात के किनारे से गोमती के किनारे आयी है इसलिये उसका एहतराम होना चाहिये''। इधर अख़्तर पिया तो ऐसे मौक़ों के इन्तजार में ही रहा करते थे सुनते ही बाँछे खिल गयीं और सुरुरे मज़हब उन पर तारी हो गया। हुक्म दिया ''सब लोग काले कपड़े पहनकर उस ज़री के इस्तकबाल के लिये पहुँचें''। अब क्या था, मँसूरनगर में लाखों का मजमा गया। उस बेपनाह इन्सानी सैलाब में उस ज़री को देखना दिखाना किसी के बस के बाहर की बात हो गयी। उस कशमकश में जब शाम ढली और अंधेरा हो चला तो भीड़ में महशर बरपा होने लगा।

आख़िरकार, नौ बजे के करीब जरी को एक सन्दूक में बन्द करके हाथी की पीठ पर लादा गया और वो हाथी खिरामाँ खिरामाँ इस कर्बले से आगे बढ़ा। जरनैल सिकन्दर, हशमत जब्बाद अली साहब, वली अहद मिर्जा हामिद अली बहादुर और दूसरे शहजादे, जो काजमैन के करीब खड़े थे उस सन्दूक को दरे

दौलत पर आया देखकर वाजिद अली शाह ने ज़र्द महल से निकल कर सलाम किया और उस ज़री को नगीने वाली बारादरी में रखवा दिया, जहाँ उसकी नज़र नियाज़ में उस रात चाँदी बिछ गयी थी।

## मनचला शहज़ादा

अवध के नामी नवाब वाजिद अली शाह की शादी उनके युवराज काल में सैय्यद नवाब अली ख़ाँ तथा बेगम बराती ख़ानम की बेटी आलम आरा बेगम से जनवरी 1837 में हो गयी थी। अपनी इस प्रधान बेगम (ख़ास महल) से चार दिन का वास्ता रख के जल्दी ही मुँह मोड़ गए और अपने रास विलास के लिए निर्मित आनन्द सभा में दिन रात बाज़ारु और तो और ख़ुशामदी लौंडों में उठने बैठने लगे।

आज़म बहू को इसका दुख हुआ तो उन्होंने जाकर सीधे अपने ससुर से शिकायत की कि अब्बा हिज़रत अब आपका घर ही मेरा घर है और आप ही मेरे बाप हैं ऐसे में आप से न कहूँ तो किससे कहूँ। आपके साहबज़ादे ने मुझसे सिर्फ़ चार दिन की निस्बत रख के किनारा कर लिया है। मैं महल में कनीज़ों के बीच बैठी उनका इन्तज़ार करती हूँ और वो हैं कि उनको बदलचन माशूक़ों से फ़ुरसत नहीं है तो फिर ऐसे में मेरा क्या होगा।''

शाही अवध अमजद अली शाह यह सुनकर अपने बेटे मिर्ज़ा क़ैसर जमां वाजिद अली से बेहद नाराज़ हुए उन्हें करीब बुलाकर फटकार लगायी और होशियार किया ख़ैर जाने आलम ने सर झुका के सारा सितम झेल लिया और फिर अपनी नई दुल्हन के पास जाकर कहा ''आपने क्या खूब हिम्मत से काम लिया कि मेरे वालिद से जाकर मेरे सरोकारों की शिकायत की। क्या आप बताएंगी कि इससे आपको क्या मिला, सिवा इसके कि आप मेरी नज़रों से गिर गईं। आप मेरे दिल में जगह बना सकती थीं अगर कुछ कुटनियों को लगाकर शहर से हसीन छोकरियों को महल में गंजीफ़ा चौपड़ खेलने के लिए बुलवातीं, उन्हें अपनी सहेलियां बना लेतीं और फिर उन्हें किसी न किसी बहाने से मुझको नज़र कर देतीं। उसी दम नवाब आज़म बहू को अपना सारा भविष्य दिखायी दे गया कि मैं किसके पल्ले पड़ी हूँ और अब मेरी ज़िन्दगी क्या होगी।

## परीख़ाना के किरदार

वाजिद अली शाह को परी जमालों की सोहबत बहुत पसन्द थी और यहाँ तक कि उन्होंने कुछ फ़ाहिशा औरतें महज मुहब्बत करने के लिये तनख़्वाह पर नौकर रख ली थीं। उन्हीं औरतों में मोती ख़ानम भी आयी थी।

मोती ख़ानम नाचने गाने में बड़ी पारंगत थी। स्वभाव की बड़ी चतुर-चालाक और शोख़ मिजाज़ औरत थी। वाजिद अली शाह उसके चम्पई रंग और कंटीले नैनों पर कुरबान थे। उसकी बाईं आँख पर एक तिल भी था जिसे जाने आलम अपना दिल कहा करते थे। मज़ा यह कि यही पेशेवर मुहब्बतफ़रोश और इससे पहले बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की दरबारी जल-सेवालियों में मुलाज़िम थीं, मगर अब तो वाजिद अली शाह उस नाचीज़ पर दिलोजान से निछावर थे। इसी मोती ख़ानम के इश्क़ में दीवाने होकर उन्होंने दो दीवान रच डाले और तीन मसनवी नज़्में कह डालीं।

उसी ज़माने में लखनऊ शहर में जहानी नाम की एक मशहूर डोमनी रहा करती थी। उसकी बेटी गुलबदन अच्छी शक्लोसूरत की तो थी ही, गाने बजाने की कला भी उसे अपनी माँ से विरासत में मिली थी। जब इस फूल की खुशबू क़ैसरबाग के रंगीले कुँवर तक पहुँची तो उनके हरकारे मुहम्मद अली खाँ ख़्वाजासरा दयानुतुद्दौला ने एक दिन इस माहपारा को हुजूर के आँगन में लाकर खड़ा कर दिया। शाहे अवध के दिल पर उसकी मोहिनी ऐसी पड़ी कि उस दिलकश सूरत को फौरन अंगीकार कर लिया गया "परीख़ाना" में उस नाज़ुक अदा फूल को "माशूक़ परी" का नाम दिया गया और उसे नाच गाने की तालीम दी जाने लगी। वह गाना बजाना सीख रही थी कि सुल्ताने आलम ने उससे रिश्ता कर लिया। उसे गर्भवती माँ बनने का शगुन देखते ही उसे महल के परदों में बिठा दिया गया और परी के पर उतार कर महल का ख़िताब लगा दिया गया। अब उसे "माशूक़ महल" कहा जाने लगा। जब उस चाँद की गोद में तारा खिला तो हाकिमें तख़्त बादशाह अमजद अली शाह ने अपने पोते को मिर्जा फरीदूकद्र बहादुर नाम दिया और बहू के नाम कुछ जागीर लिखकर "नावाब माशूक़ महल साहिबा" कहा।

माशूक़ महल बादशाह की सबसे वफ़ादार बेगमों में थीं। मार्च 1856 में जब नवाब वाजिद अली शाह लखनऊ छोड़कर कलकत्ते की तरफ रवाना हुये तो

बादशाह की गाड़ी के पीछे जो पहली टमटम थी वो माशूक़ महल की थी। जाने आलम को जब कलकत्ते में क़ैद करके फ़ोर्ट विलियम में डाल दिया गया तो उन्होंने अपनी दिलरूबा बेगमों से जुदा हो जाने पर हर एक से कुछ न कुछ निशानी भेजने की तलब की थी–

"तबियत बहुत मेरी घबराई जब
किया पाए "क़ैसर" का छल्ला तलब
करे नाख़ुने दस्ते "माशूक़" से
तलब ये किया दिल के सन्दूक से
कहा "जाफरी" से किए ख़ुशजमाल
मुझे चाहिये तेरे मुँह का उगाल"–
(हुज्ने अख्तर)

वाशिम बार नासमझी पर दिल ही दिल में जल–भुनकर रह गयीं। वैसे तो वो रोज़ दोनों वक़्त अपने घर से नवाब के लिये खाना और मुश्क़ी गिलौरियाँ भेजती थीं। लेकिन उन्होंने नाख़ून काटकर भेजना नहीं पसन्द किया...

"दिया मल्कए मुल्क़ ने ये पयाम
कि मेरा है दुनिया में माशूक़नाम
मँगा उनके नाख़ु जो करती हों प्यार
वो भेजें जो हों आपका राज़दार
जो माँगे हैं नाख़ून, नहीं है वो अब
ये हज्जाम का काम सीखा है कब?"
(हुज्ने अख्तर)

इसी जवाब से वाजिद अली शाह माशूक़ महल से नाराज़ से रहने लगे। जब इन माँ बेटी की तनख़्वाहें भी कटने लगीं तो मिर्जा फरीदूँ कद्र ने माँ के कहने पर दिल्ली जाकर अंग्रेज सरकार से अपने बाप की शिकायत की। बगावत के इस कदम से नवाब का पारा और गरम हो गया उन्होंने माशूक़ महल से अपना रिश्ता तोड़ डाला। यही नहीं, उन्होंने उसकी कोठी "माशूक़ मंज़िल" को जड़ से खुदवा डाला और उसकी जगह नयी कोठी बनवाकर उसका नाम "फतह मंज़िल रखा। मारे जलन के इस कोठी की बुनियाद में वाजिद अली शाह ने एक जोड़ी तबला-सारंगी भी रखवा दिये, क्योंकि माशूक़ महल जात की डोमनी थी और ये साज़ उसके प्रतीक थे।

## आख़िरी ताजदारे अवध की उदारता

एक बार जाने आलम हवादार पर सवार होकर सैर करने निकले तो एक उस्ताद ने 4000 कबूतरों का एक दस्ता इस तरह आसमान पर उड़ाया कि वो बादशाह की सवारी के ठीक ऊपर मँडराते हुए एक रफ्तार से साथ-साथ उड़ते रहे और जिस वक्त सवारी महल की ड्योढ़ी पर आकर ठहरी तो एक आवाज़ में पूरा झुण्ड उतार लिया गया।

नवाब के चिड़ियाखाने में ऐसे भी शीराबाजी कबूतर थे जो अपना जिस्म फुलाकर गज भर का पिंजरा घेर लेते थे और ऐसे गुली कबूतर भी थे जो बारह बरस की लड़की के हाथ की चूड़ी में से निकल जाते थे। शाहे अवध ने एक बार रेशम परे कबूतरों का एक जोड़ा 24 हजार रुपये में और सफेद मोर का एक जोड़ा 11 हजार रुपये में खरीदा था।

नवाब वाजिद अली शाह के वक़्त में अवध की सल्तनत का रंग वैसे ही रौशन हुआ था जिस तरह चिराग़ बुझते वक्त एक बार भड़ककर फिर गुल होता है। परिन्दों की सौदेबाजी भी नवाबी का आसमान छू रही थी। एक बार एक ज़रुरतमन्द इन्सान वर्देदार पिंजरे में एक जोड़ा परिन्दा लेकर शाहे अवध के दरबार में आया। उसने शाही दस्तूर के मुताबिक तख़्ते सुल्तानी के करीब कोर्निश बजायी और बादशाह के लिबास शाही का दामन अपनी आँखों से लगा लिया।

बादशाह निहायत ख़ुश हुए और उस पिंजरे की तरफ इशारा करके बोले, ''यह क्या है और तुम्हें क्या चाहिये? ''उस अजनबी ने कुछ डरते हुये उभरते लहजे में कहा, ''जहाँपनाह, इसमें उकाब (गरुड़) का जोड़ा है अगर हुज़ूरआला उसे क़बूल कर लें तो यह हमारा मुक़द्दर होगा।''

बादशाह ने मुस्कराकर अपनी रज़ामन्दी दे दी। जब उसकी क़ीमत के बारे में दरबारियों ने बातचीत की तो बात 10000 रुपये पर जाकर ठहरी। इस पर पुराने वज़ीर अमीनुद्ददौला का माथा ठनका। वह पहले से ही उन चिड़ियों की नस्ल के असल होने में शक़ कर रहे थे। उन्होंने बादशाह से यह सौदा टाल देने के लिये धीरे से कहा, मगर नहीं, वाजिद अली शाह जो कह चुके थे सो कह चुके थे।

छत्तर मंज़िल में अपनी माँ के तहख़ाने में रखे एक बक्स से नवाज़ ने मोहरें निकलवा मँग़वाई और उस आदमी का हक़ अदा करके उसे बिदा कर दिया। वो परिन्दे महल के चिड़ियाखाने में एक ख़्वाजासरा के हाथों भेज दिये गये।

जब वज़ीरे आज़म ने फिर उन चिड़ियों की किस्म के बारे में कुछ कहना चाहा तो शाहे अवध ने हँसकर फरमाया "मेरे बुज़ुर्ग सलाहकार, मैं बख़ूबी जानता था कि उस बन्द पिंजरे में चील के एक जोड़े के सिवा और कुछ नहीं है। मगर आप ज़रा सोचिये, कि यह जानते हुए कि अगर यह भेद भरे दरबार में खुल गया तो उस शख़्स की जान को भी खतरा पहुँच सकता था। कुछ दौलत हासिल करने वाले उस अजनबी पर ख़ुदा जाने आलम आज क्या ज़रुरत आन पड़ी हो जो उसने अपनी मुश्किलें दूर करने की यह ख़तरनाक सूरत निकाली थी इसलिए मैंने परिन्दों पर से पर्दा उठने नहीं दिया।

## क़ैसरबाग़ की हुकूमत

यह अवध सल्तनत के पतन के आख़िरी दौर की कहानी है जिस तरह दिल्ली पर कम्पनी सरकार ने अपना शिकंजा कसके आख़िरी मुग़ल बादशाह बहादुर शाह जफ़र को लाल किले तक सीमित कर दिया था उसी तरह लार्ड डलहौज़ी के इशारों पर जनरल आउटरम ने अवध के आख़िरी बादशाह वाजिद अली शाह को क़ैसरबाग़ की पीली चहार दीवारी के अन्दर महदूद कर दिया था। नाच रंग और संगीत की महफ़िलों में लीन जाने आलम को दुनिया जहान की कोई ख़बर वैसे भी नहीं रहती थी। उसी आलम में एक दिन गुलनार नाम की एक कनीज़ ने एक चांदी की तश्तरी पर एक विक्टोरियन सिक्का जो कम्पनी बहादुर की तरफ़ से जारी किया गया था रखा और उस तश्तरी को गुलाबी ज़रीदार पोश से ढककर नवाब साहब के सामने पेश करते हुए कहा, "सुल्तान आलम सारे लखनऊ में अब कम्पनी का ये सिक्का चल रहा है और आपके सिक्के आंखों से ओझल हो रहे है, ये सिर्फ क़ैसरबाग़ है जहाँ आप और आप की हुकूमत बाकी है"।

शाहे अवध ने मलका टूड़ियां के उस सिक्के को हाथ में लेकर ग़ौर से देखा अलट पलट के जायज़ा लिया और फिर अंगूठे उंगलियों से कसके रगड़ दिया। एक तरफ से मलका की सूरत ख़तम हो गयी और दूसरी तरफ़ से सारी इबारत मिट गयी उसके बाद गुलनार कनीज़ को देकर बोले कि जाओ और इसे इसी वक़्त बेलीगारद के अहाते में फेंककर आओ"।

## कटोरी का पन्ना

जब अवध के आख़िरी नवाब वाजिद अली शाह का ज़माना आया तब सल्तनत के हालात अच्छे नहीं थे, अवध के खजाने की दौलत बंटकर क़ैसरबाग़

के महलों में आने लगी थी। बादशाह बचपन से ही चंचल चित्त थे। उनके बुज़ुर्ग वज़ीर इमदाद हुसैन खाँ उर्फ अमीनुद्ददौला साहब उनकी नस नस से वाक़िफ़ थे। चूँकि बादशाह हर घड़ी रास विलास में डूबे रहते थे, इसलिये वज़ीरे आला उनके बाप के ख़ज़ाने को उनकी नज़र से हर कोशिश दूर रखते थे। कहते हैं कि जाने आलम एक बार इस बात पर मचल गये कि वह अपने बाप दादों का ख़ज़ाना देखेंगे। उनकी इस अभिलाषा पर वज़ीरे आज़म बादशाह की आँखों में पट्टी बाँधकर उन्हें ज़मीन के अन्दर बने हुये उन तहख़ानों में ले गये, जहाँ सात पीढ़ियों की जमा पूँजी और माल असबाब के अंबार लगे हुये थे।

सुनते हैं, दिन के ठीक बारह बजे छत्तर मंज़िल के सुनहरे छत्र की परछाई दरिया में जिस जगह पड़ती थी, उसी जगह में गोमती के नीचे से होकर ख़ज़ाने पहुँचने का रास्ता बना हुआ था। बादशाह ख़ज़ाने में रखे हुये बहुमूल्य सामान को देखकर चकित रह गये। वज़ीरे आज़म के इस आग्रह पर कि वह अपने पुरख़ों के दौलतख़ाने में से ख़ाली हाथ न लौटें, वहाँ से निकलते वक्त बादशाह अपने साथ ये तीनों चीज़ें लेते आये....एक हीरों की शतरंज, एक मोतियों की छड़ी और एक पन्ने की कटोरी। ये तीनों बेशक़ीमती सौंगातें बादशाह की ख़िदमत में अरसे तक रहीं और आनी जानी माया की तरह देखते ही देखते इधर उधर हो गयी।

नवाब वाजिद अली शाह हीरों की शतरंज बेगम हज़रत महल के साथ खेलते थे और इसमें कोई शक नहीं कि मोहरों की चाल और सल्तनत के देखभाल के मामले में बेगम उन्हें मात दे गयी और वह अनमोल शतंरज धीरे धीरे उनकी अमानत बन गयी। सन् 1856 में जब बादशाह अवध की गद्दी से उतार दिये गये और उन्हें लखनऊ छोड़कर कलकत्ता जाना पड़ा, तब वह जवाहरातों की छड़ी और पन्ने की कटोरी अपने साथ लेते गये। अवध राज्य की नाव डूब जाने के बाद ये तीनों निशानियाँ आहिस्ता आहिस्ता अपने वारिसों के हाथ से बेहाथ हो गयीं।

सन् 1857 की गदर के बाद हजरत महल को नेपाल में पनाह लेनी पड़ी और उन्हें उम्र भर नेपाल नरेश के संरक्षण में रहना पड़ा था। इस अहसान के बदले में उन्होंने हीरों की शतंरज नेपाल के राणा को बतौर तोहफ़ा दे डाला। भारत में ब्रिटिश हुकूमत के दौरान जब किंग एडवर्ड प्रिंस आव़ वेल्स हिन्दुस्तान आये तब मटियाबुर्ज कलकत्ता मे रहने वाले नवाब वाजिद अली शाह ने उन्हें मोतियों की छड़ी नज़राने में दे दी और इस तरह वह ब्रिटिश म्यूज़ियम के पिंजरे में क़ैद हो गयी।

अवध के इस बदनसीब बादशाह की मुश्किलें और मुफ़लिसी जिन दिनों हद से बाहर हो रहीं थी, उन दिनों उन्होंने उस असली पन्ने की कटोरी को कलकत्ते के मणि बाज़ारों में बिकने के लिये भेजा था, मगर अफ़सोस कि कोई जौहरी उस कटोरी की क़ीमत अदा करने की हैसियत नहीं रखता था, इसलिए वह कटोरी बाज़ार की हवा खाकर लौट आयी। आख़िरकार झुँझलाहट और गुस्से में आकर नवाब साहब ने वह कटोरी ज़मीन पर दे मारी जिससे उसके टुकड़े टुकड़े हो गये और फिर वो पन्ने के टुकड़े रतनफ़रोशों के हाथ बिकने लगे। गहरी झलक वाले वो पन्ने उत्तर भारत में दूर दूर बिके। आज भी लखनऊ के जौहरियों में "कटोरी का पन्ना" कहकर पन्ने की सबसे क़ीमती किस्म बेची और खरीदी जाती है।

●●●

# कुछ इधर-उधर की
# भाण्डों की महफ़िलें

नवाब सआदत अली ख़ाँ के वक़्त में "डोला" नाम का प्रसिद्ध भाण्ड हुआ है। किसी रईस ने इस नक्काल को ईनाम में एक बेहद फटा पुराना दुशाला दे दिया था। भाण्डों ने उस दुशाले को लेकर एक नया तमाशा तैयार कर दिया।

एक ने हाथ में दुशाला लेकर उसे उलट पलट कर देखा और निगाहें जमाकर उसमें कुछ पढ़ने लगा।

दूसरे ने सवाल किया, "अमाँ, क्या देख रहे हो?"

जवाब मिला, "कुछ तहरीर है। पढ़ने की कोशिश कर रहा हूँ।"

उसने बड़े अन्दाज़ से पूछा, "आखिर लिखा क्या है, मैं भी तो सुनूँ।"

पहले ने जेब से ऐनक निकाली और इस कढ़ाई के बूटे को अटक-अटक कर पढ़ लिया........"

"ला इलाहा इल्लिल्लाह.........."

दूसरे ने फिर पूछा, "अरे वो कैसे लिखा हो सकता है। हमारे हज़रत से पहले पहले का जो है।"

भाण्डों के बात करने का ढंग कुछ निराला होता है, जो अपने आप में एक लतीफ़ा बन कर रह जाता है।

बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के वक़्त में रेज़ीडेन्सी में कुछ भाण्डों ने नक्काली का हुनर दिखाया। जिसके बाद दावत का इन्तज़ाम हुआ, अंगरेजी तहज़ीब से मेज कुर्सी पर कोरमा पुलाव का डिनर हुआ और उसमें मुर्ग़ भी पकाया गया था। इत्तिफ़ाक़ से परोसने वालों ने भाँड़ों के सरगना अच्छे जानी की तश्तरी में मुर्ग़ नहीं परोसा, जो एक बड़े डोंगे में कुछ हाथ दूर रखा था।

ख़ाना शुरु हो गया। अच्छे जानी को बड़ी बेचैनी हुई। मगर वह केवल हँसने लगा। पास बैठे लोगों ने उस बेबात की हँसी का सबब पूछा तो वह भाँड बोला, "हँसी इस बात पर आई कि अभी चन्द घण्टे पहले ये मुर्ग़ दालान से आँगन में, आँगन से अलगनी पर, और अलगनी से मुंडेर पर दौड़ रहा था। मगर अब इस

ग़रीब की ये ताब नहीं रही कि दो हाथ की दूरी नाप ले यानी "डोंगे से प्लेट में आ सके।" लोग उसकी जबानगोई के क़ायम हुये और शर्मिन्दा होकर मुर्ग़ परोसने लगे।

नसीरुद्दीन हैदर के साले अली मुहम्मद खाँ नवाब सिराजुद्दौला कहे जाते थे। इनकी कोठी चौधरी का गढ़ैया नामक मुहल्ले में थी, इसलिये ये "गढ़ैया के नवाब" के नाम से मशहूर थे। नवाब साहब को भाँडों की नकल से बड़ी चिढ़ थी और भाँडों को अक्सर बुरा भला कहते रहते थे। एक बार शहर में किसी रईस की ड्योढ़ी में दावत थी, जहाँ सिराजुउद्दौला को भी बुलाया गया था। ग़रज़ यह कि नवाब साहब जब वहाँ पहुँचे तो देखा कि भाँड़ों की महफिल जमी है। जैसे ही नाच–रंग शुरु हुआ, एक भाँड़ सामने से हाँडी में एक मेंढक लेकर बरामद हुआ। मेढक को फर्श पर बिठाकर उस बेनियाज़ ने आवाज़ लगायी, "बाअदब, बामुलाहिजा होशियार.....नवाब साहब तशरीफ ला रहे हैं....."

फौरन ही दूसरा भाँड मटक कर बोला, "ऐं, मगर वो हैं कहाँ"?

पहले भाँड ने जवाब दिया, "ये क्या सामने बैठे हैं", और मेंढक की तरफ इशारा करके कहा, "इन्हें गढ़ैया के नवाब कहा जाता है।"

नसीरुद्दीन हैदर के बाद नवाब वाजिद अली शाह ने जलसों–मुजरों में भाँडों की प्रथा को बड़ी पनाह दी। उनके जलसों–मुजरों में भाँडों ने चार चाँद लगा रखे थे। क़ायम-दायम उनके वक्त में सरनाम थे। बादशाह पँजुम जाने आलम को तबाह करने में चार चीज़ों का हाथ था। औरतें, अंग्रेज, नाचने-गाने वाले और नकी खाँ...."। सैयद अली नकी खाँ उर्फ मदारुद्दौला उनके ख़ास वज़ीर थे, मगर नमक हराम निकले। मज़ा ये कि इस नये वज़ीर से उनकी पहली मुलाकात एक तवायफ़ के कोठे पर हुई थी। अली नकी तबले के उस्ताद थे और वाजिद अलीशाह को ठुमरियाँ गाने का शौक था। बहरहाल इस दोस्ती की बुनियाद ही बुरी थी। राजमहल में पूरी तरह अपना सिक्का जमा लेने की ग़रज़ से इस वज़ीर ने अपनी एक बेटी भी बादशाह को ब्याह दी थी जिसे अख़्तर महल का खिताब मिला था।

एक बार किन्हीं उस्ताद दाग़ की सलाह पर शीशमहल के सहन में बज़्मे मुशायरे का इन्तज़ाम किया गया, जिसमें अच्छे अच्छे शायरों ने ग़ज़ल पढ़ी। उस साल भाण्डों की नक़ल पर किसी ने ग़ौर नहीं किया और मुशायरे की महफ़िल

को ही क़द्र दी गयी। इस अपमान और नुकसान से भाण्डों को बहुत ठेस पहुँची और उन्होंने अपने पेशे की हिफ़ाज़त के लिये अगले रोज़ एक नई नक़ल तैयार कर ली। एक भाण्ड शेर की खाल ओढ़कर मंच पर उतरा और दूसरे दो भाण्ड उसका शिकार खेलने निकल पड़े।

हँसने हँसाने का समां इस तरह बाँधा गया कि एक कमसिन भाण्ड शिकारी की हैसियत से आगे बढ़ा, मगर उसके हाथों में शिकारी की बंदूक काँप रही थी। शेर को देखकर खुद उसका दम निकला जा रहा है और वो किसी भी तरह निशाना नहीं साध पा रहा है। बन्दूक अब गिरी तब गिरी की नौबत आ पहुँची। तब उसके साथ का बड़ा भाँड उसकी बन्दूक को पीछे से आकर सम्भालने लगा और लड़के को डाँटकर कहने लगा, ''अबे, इधर उधर क्या देख रहा है बेहूदे, दाग. .......'' लड़के को पसीने छूट रहे हैं और भाँड चीख रहा है, ''सम्भल जा कमबख़्त, दाग''......

छोकरा फिर लरज के रह गया तो उसने फिर डपट दिया........

''अबे उल्लू के पट्ठे दाग.........हरामज़ादे, दाग............''

उधर भरी महफिल से दाग साहब उठकर जा चुके थे क्योंकि प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रुप से बहुत कुछ उन्हें सुनाया जा चुका था।

## बादशाह ग़ाज़ीउदीन हैदर के प्रसंग में

उस दौर में जनता के दुख सुख की परवाह किसी को न थी। हालाँकि बाद में बादशाह के बहुत कहने पर वज़ीरे आला ने एक घोड़े की पीठ पर दुम के करीब एक पीपा बँधवा कर उसे शहर में सईस के साथ गश्त करने के लिये छोड़ दिया था। लोग बाग अपनी शिकायतें कागज पर नाम पता समेत लिखकर उसी कनस्तर में डाल दिया करते थे शाम तक घोड़ा लेकर सईस लौटता था तो वो पीपा खोलकर दरे दौलत में पहुँचा दिया जाता था जिस पर सरकार ग़ौर फरमाते थे।

बादशाह के चमचे उन तक कोई ख़बर, कोई बात पहुँचने ही नहीं देते थे। दरिया पार हुस्नबाग़ के रनिवास में पिछले दौर की छोड़ी हुई और तमाम बेवा बीबियाँ रहतीं थीं। उनके दस्तरखान, पानदान और लौंडियों, बाँदियों का ख़र्च सरकारी ख़ज़ाने से जाता था। जब होशियार अफसरों ने उसमें कटौती कर दी

तो वहाँ अफ़रा तफ़री मच गयी। वो परदानशीन औरतें अपनी फ़रियाद अब किससे करें। तब उन्होंने एक तरकीब सोची और बेमुहर्रम, मुहर्रम के जमाने में बजने वाला लखनऊ का उल्टा बाजा जोर से बजवाना शुरु कर दिया। बादशाह इस मनहूसियत से घबरा गये कि आख़िर ये कहाँ क्या हो रहा है क्यों और कैसे, तब जाकर कहीं बात खुली और उन औरतों की मुश्किलें दूर हुई।

## जाने आलम के प्रसंग में (जिन्नातों की मस्जिद)

ये जाने आलम का ज़माना था बादशाहत हासिल होते ही उनके दिल में आया कि क्यूँ न अपनी पलटन को बाक़ायदा दुरुस्त कर लें ताकि दरिया पार फिरंगियों की छावनी मड़ियाँव तक दबदबा पहुँच सके कि हम किसी तरफ से कहीं से कुछ कम नहीं हैं।

शाहे अवध पंजुम ने अल्मास बाग़ के उत्तर में मूसाबाग़ के कुछ पहले अपनी नादिरा पलटन की कवायद के लिये एक मैदान तैयार करने का हुक्म दिया, साथ ही ये क़ौल भी किया कि वहीं एक छोटी मस्जिद तामीर की जाये जिससे मुस्लिम सिपाहियों को नमाज़ पढ़ने की सहूलियत हो। ये सब कोशिशें चल ही रहीं थी कि अचानक हुक्म जारी हुआ कि कल आलाहज़रत मुआयना करेंगे मस्जिद ओ मैदान का और फ़ौजी परेड का जायज़ा भी लेंगे।

लखनऊ में उन दिनों मौजमस्ती, आरामतलबी शौक़ो शग़ल और लापरवाही का माहौल था ग़रज़ ये कि कारिन्दों के हाथ पाँव फूल गये कि अब क्या हो और कैसे हो। चालाक अफसरों और ख़ादिमों ने तमाम ईंट नवीस, राज मिस्त्री लगा दिये, लखौड़ियों की ढेर हो गयीं और फिर बन भी गयी। अब जब उसका प्लास्टर सूखे तब उस पर कलई हो। बाहर का तो लाल चूना सूख चला लेकिन अन्दर तो एकदम नम ही था। रात की रात मुसाहिबों ने मनों इमली का कोयला फुँकवा दिया और अंगीठियों के ज़ोर से प्लास्टर का दिमाग दुरुस्त कर दिया गया।

सुबह होते होते इससे पहले कि सुल्ताने आलम के क़ैसरबाग़िये मौका महल का जायज़ा लेने आ धमकें मस्जिद उजले चूने में नहा चुकी थी सबेरे की खिलती धूप में आसपास जवार के निवासियों ने जब रातों रात की तैयार मस्जिद को वहाँ लहकते हुए पाया तो उनको ज़रा भी इनकार इस बात से नहीं हुआ कि ये काम जिन्नातों का ही है वरना आदमी की औक़ात क्या है।

शाहे अवध पँजुम आये और ज़रुर आये सिर्फ और सिर्फ एक दिन अपनी नादिरी पलटन की सलामी लेने, मस्जिद का मुआयना करने और फिर उसके बाद फ़ौजी अमले को दूसरा दिन नसीब न हुआ।

वक़्त ने और सोहबते कमबख़्त ने अख़्तर पिया को इतना मौका ही न दिया तब तक कि जब तक सल्तनत का बेड़ा गर्क न हो गया।

हाँ लखनऊ में हरदोई रोड पर बालागंज (बालकगँज) के करीब वो जिन्नतों की मस्जिद आज भी खड़ी है जहाँ कुछ लोग अब भी जुमेरात (बृहस्पतिवार) अपनी तमन्नायें लेकर जाते हैं, दीवारों पर कोयले से अपनी मुरादें लिखते हैं–और मन्नतों का धागा बाँधकर चले आते हैं–

"घर कौन सा बसा, कि जो वीराँ न हो गया
गुल कौन सा हँसा जो परीशाँ न हो गया"

## बादशाह नसीरुदीन हैदर और उनके जान साहब

रेख़्ती......उर्दू ज़ुबान और शायरी के इतिहास में एक जनाना ख़ेमा है जिसकी धूम ये रही कि इस रंग का सारा विकास बन्द चहार–दीवारी में हुआ। महलों की ये लगी लिपटी, चटपटी जबान अपने आपस में दिलजोई के लिये बोली जाती थी जिसमें औरतों के आस पास की पूरी ज़िन्दगी, पूरा माहौल दर्ज रहता था। बेगमात से भी बढ़कर उनकी ख़ादिमाएँ इस फन में माहिर हुई और यही वजह है कि उसके सारे मुहावरे, उनकी अपनी ईजाद थे। जैसे कोई किसी से अपना दुखड़ा यूँ कहती........"ऐ बीबी जो दिन देख लिये सो देख लिये अब तो आठ–आठ आँसू रोना है, सारी उम्र। "........या फिर कोई किसी पे फ़िदा हो जाती तो कुछ इस तरह......"बन्नो मैं तो अपनी जान आपकी एड़ी चोटी पर से वारुँ।"...... नौकरानियाँ महल की बेगमों पर छींटा कशी करते हुए आपस में हँसती रहतीं। "ये तो महल है जहाँ सौतनों में तो यूँ ही अण्डोई चलती रहती है।" कभी–कभी तो कोई बात ऐसे लपेट के कही जाती......"ऐ लो काहे की ढोलक और कहाँ के सौहर अभी कल ही तो बेनमाज़ हुई हैं"।

ये भाषा जो अक्सर मर्दों के कानों से टकराती थी उन्हें कुछ ऐसी भायी कि अच्छे शायर रेख़्ती में शेर कहने के ख़्वाहिशमन्द हो गये।

अवध के दूसरे बादशाह नसीरुद्दीन हैदर का सारा जीवन विलासिता के घने साये में बीता था। उनको तमाम तरह के शौक़ थे। चाहे वो देशी हों या

विदेशी। उनके दरबार के चोंचले, हरम की सरगर्मियाँ और मुसाहिबों की चालबाज़ियाँ बहुत दिलचस्प हैं। उसी सिलसिले में एक किस्सा यहाँ बयान किया जा रहा है। नवाब बड़े नाज़ुक मिजाज़ थे। वह किसी तरह की सर्दी, गर्मी या भूख प्यास बर्दाश्त नहीं कर सकते थे इसलिये रोज़ेदारी से दूर रहते थे। एक साल रमजान के महीने में किसी मौलाना के कहने पर उन्होंने रोज़ा रखने का क़ौल किया। सहरी के बाद अभी डेढ़ पहर ही बीता था कि नवाब भूख प्यास से बेचैन होने लगे। यही नहीं उनकी तबियत भी बिगड़ाने लगी। यह ख़बर लगते ही चारों तरफ महल में हलचल मच गयी और फिर ये ख़बर उनके ख़ास मुसाहिब ''जान साहब'' तक भी पहुँच गयी। इस बात के पहुँचते ही जान साहब बारह गज का गिरन्ट का लगा टँका पैजामा पहन कर और उस पर लचके पटठेदार दुपट्टा ओढ़ कर सुलतानी ड्योढ़ी पर आ पहुँचे। पीनस से उतर कर सीधे बादशाह के गोशेखाने में दाखिल हुये और फिर किसकी मजाल थी जो उन्हें रास्ते में रोक टोक लेता। उन्होंने अपने बादशाह का जब ये हाल देखा तो फौरन चटाचट बलायें लीं और फिर रेख़्ती में ये कहा–

> **''मैं न कहती थी कि न रख, मैं तेरे वारी, रोज़ा**
> **बन्दी रख लेगी, तेरे बदले हज़ारी रोज़ा''**

# हमारा लखनऊ पुस्तकमाला

1. लखनऊ का बंग समाज–श्रीमती माधवी बंधोपाध्याय
2. लखनऊ के मोहल्ले और उनकी शान–डॉ. योगेश प्रवीन
3. लखनऊ के कश्मीरी पंडित–डॉ. बैकुन्ठ नाथ शर्गा
4. लखनऊ नवाबों से पहले–प्रो. शिव बहादुर सिंह
5. बेगम हज़रत महल–श्री रौशन तकी
6. अवध–लखनऊ में 1857 की क्रांति, भाग–1 पृष्ठ भूमि–प्रो. प्रदीप कुमार घोष
7. लखनऊ में 1857 की क्रान्ति, भाग–2 विप्लव–डॉ. अरुणा चक्रवर्ती
8. लखनऊ का कायस्थ समाज–श्री हेमन्त कुमार
9. लखनऊ का क्रान्तितीर्थ काकोरी–श्री उदय खत्री
10. लखनऊ के चित्रकार और मूर्तिकार–डॉ. (श्रीमती) शैफाली भटनागर
11. लखनऊ के संगीतकार–श्री राम किशोर बाजपेई
12. लखनऊ का शिया समाज–श्री रोशन तकी
13. लखनऊ की शायरी, जहान की जुबान पर–डॉ. योगेश प्रवीन
14. मुंशी नवल किशोर और उनका प्रेस–डॉ. रणजीत भार्गव
15. काकोरी केस के क्रांतिवीर–श्री उदय खत्री
16. राजा टिकैत राय–श्री हेमन्त कुमार
17. लखनऊ के हिन्दी कवि–प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित
18. कथक नृत्य का लखनऊ घराना–डॉ. विधि नागर
19. लखनऊ के इमामबाड़े–डॉ. प्रशान्त श्रीवास्तव
20. अवध की बेगमें–डॉ. योगेश प्रवीन
21. प्रो. बीरबल साहनी और पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान, लखनऊ–डॉ. मुकुन्द शर्मा
22. 1857 के बाद लखनऊ की बरबादी–डॉ. रौशन तकी
23. मर्सिया और लखनऊ में मर्सियागोई–श्री सैयद अनवर अब्बास
24. लखनऊ के गिरजाघर–डॉ. नरेश सिंह
25. लखनऊ का कैन्टोनमेन्ट–ले. कर्नल डॉ. गोपाल चतुर्वेदी एवं डॉ. मधु चतुर्वेदी
26. लखनऊ शहर–कुछ देखा–कुछ सुना–श्री इन्दर चन्द तिवारी
27. लखनऊ की रेजीडेन्सी–भाग–1–डॉ. नरेश सिंह
28. लखनऊ की रेज़ीडेन्सी–भाग–2 डॉ. नरेश सिंह
29. लखनऊ की लुप्त होती कलाएँ–सैय्यद अनवर अब्बास
30. अवध की लखनउवा कहानियाँ–डॉ. योगेश प्रवीन
31. लखनऊ का पहला क्रान्ति वीर–आग़ा मिर्ज़ा कम्बल पोश–डॉ. रोशन तकी
32. लखनऊ का काफी हाउस–श्री प्रदीप कपूर
33. फिल्म जगत को लखनऊ का योगदान–डॉ. नरेश सिंह
34. लखनऊ के सिनेमाघर–डॉ. नरेश सिंह
35. नवाबी के जलवे–डॉ. योगेश प्रवीन
36. लखनऊ के नक़्क़ाल व भाँड़–डॉ. रौशन तक़ी

**डॉ० योगेश प्रवीन**

जन्म – 28 अक्टूबर, 1938 (लखनऊ)

शिक्षा – एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (संस्कृत), डी. लिट्

सेवा – प्रवक्ता हिन्दी (सेवानिवृत्त) विद्यान्त हिन्दू इण्टर कालेज, लखनऊ।

भाषा – हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला, अवधी।

प्रकाशन (*अवध संदर्भ में*) – दास्ताने अवध, साहबे आलम, कंगन से कटार, दास्ताने लखनऊ, बहारे अवध, नाजो (रूपान्तरण), डूबता अवध, ताजदारे अवध, गुलिस्ताने अवध, अवध के भित्ति चित्रांकन, अवध के धरा अलंकरण, लक्ष्मणपुर की आत्मकथा, आपका लखनऊ, मुहब्बतनाम, हिस्ट्री ऑफ लखनऊ कैण्ट, लखनऊ मोनोमेन्ट्स (अंग्रेजी)

काव्य – मयूर पंख, शबनम, पीले गुलाब, अपराजिता, विरह बाँसुरी, सुमनहार, आधी सदी के उजाले, इन्द्रधनुष, अंजुमन।

अन्य – कंचनमृग, (कहानी संग्रह), पत्थर के स्वप्न, अंक विलास, अग्नि वीणा के तार।

सम्मान
- बालकृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार (1973)
- राष्ट्रीय युवा प्रतिष्ठान पुरस्कार (1958)
- राष्ट्रीय पर्यटन एवं नागर विमानन पुरस्कार (1985)
- तुलसी अनुशंसा पुरस्कार (1988)
- साहित्य साधना पुरस्कार (1994)
- उत्तर प्रदेश अकादमी पुरस्कार (1998)
- राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार (1999)
- प्रसार भारती कला सार्थक सम्मान (1999)
- हिन्दी साहित्य पुरस्कार (हिन्दी, उर्दू साहित्य अवार्ड कमेटी उ०प्र०) (2000)
- लक्ष्मण सम्मान (2000)
- मेरठ विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट् की उपाधि से सम्मानित (2002)
- यू०पी० रत्न सम्मान (2002)
- उ०प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा 'कला भूषण' सम्मान (2004)
- यश भारती सम्मान, 2006

सम्पर्क – डॉ० योगेश प्रवीन
पंचवटी, 89 गौसनगर, पाण्डेयगंज, लखनऊ – 18
दूरभाष (आवास) : 2229919, मो. 9336861204